योगी सार्वभौम सदाशिवेन्द्र सरस्वती

तथा

शंकर-सदुपदेश,

विवाहकल्प, तीर्थस्नान-विधि, संन्यासक्रम
तथा यति चातुर्मास्यारंभोति कर्तव्यता

स्वर्गीय ब्रह्मचारी पं० खड्गदेव शर्मा विरचित

तथा

लेखक का जीवनवृत्त.

सम्पादक
पं० मथुराप्रसाद शर्मा

प्रकाशक
चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य
व्यवस्थापक ज्ञान-प्रकाश-मन्दिर
पो० माछरा, ज़िला मेरठ.

प्रथमावृत्ति १००० } विक्रम संवत् १९९१ { मूल्य

इस पुस्तक के छपाने का सम्पूर्ण व्यय

श्रीमता नारायणीदेवी झड़ीना निवासिनी

ने देना सहर्ष स्वीकार किया है

वक्तव्य ।

हम स्वर्गीय पं० खड्गदेव शर्मा की अनति विस्तृत जीवनी के साथ उसके लिखे ग्रन्थ, जिन में पहला 'योगिसार्वभौम' सदाशिवेन्द्र सरस्वतीजी महाराज का जीवन-चरित और दूसरा शङ्कर सदुपदेश है, प्रकाशित करते हैं। ये दोनों ग्रन्थ हिन्दी में हैं। महाकाय नहीं किंतु सारभूत हैं। ये विद्याभ्यास में व्यस्त एक छात्र की कृति हैं। उसके हिन्दी प्रेम का उज्ज्वल प्रमाण हैं। कौन कह सकता है कि आगे चलकर उससे हिन्दी की कितनी बड़ी सेवा होती। इसके कई लेख "त्यागी" में प्रकाशित हुए हैं इस सबसे उसकी भावनाओं का कुछ परिचय सुलभ है।

हिन्दी के उल्लिखित दो ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत में विवाह कल्प उसका लिखा है जो अपूर्ण है। तीर्थस्नानक्रम, संन्यासक्रम, यतिचातुर्मास्यारंभेति कर्तव्यता आदि उसके कागज़ों में मिले हैं। सभी उपयोगी हैं और उसकी विकासोन्मुख सर्वतोगामिनी योग्यता के परिचायक हैं अतः उन्हें भी प्रकाशित करना उचित समझा गया।

खड्गदेव की मृत्यु के समनन्तर उसके सम्बन्ध में अनेक प्रेमी जनों के जिज्ञासापूर्ण पत्र आने पर सब को पृथक् २ लिखना अशक्य समझकर पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी सोमतीर्थजी महाराजने "ब्रह्मचारी खड्गदेव शर्मा का जीवन-वृत्त और अति शोकजनक मृत्यु" नाम पुस्तिका की ५०० कापियां वितरणार्थ छपवाई थीं। वही जीवनी कुछ परिवर्धन के साथ प्रकाशित की गई है।

प्रकाशन का उद्देश्य एक ऐसे स्वर्गीय युवक के प्रति कर्तव्यपालन की चेष्टा है जिससे देश, समाज और धर्म की बड़ी सेवा की आशा थी।

—प्रकाशक

पूज्य श्री १०८ स्वामी सोमतीर्थजी दण्डी
गुरु स्व० ब्रह्मचारी खड्गदेव

दो शब्द ।

स्वर्गीय प्रियबन्धु ब्रह्मचारी पं० खड्गदेव शर्मा पूज्यपाद श्री १०८ गुरुवर स्वामी सोमतीर्थजी महाराज के "भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः" इस महाकवि भारवि की उक्ति के अनुसार विशेष कृपापात्र थे ।

यम ने जिस प्रकार अपने शिष्य नचिकेता की योग्यता से मुग्ध होकर कहा था "त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा" उसी प्रकार पूज्य स्वामीजी का हृदय कहता था "त्वादृङ् मे भवताच्छात्रः" । अस्तु,

स्वामीजी अपने इस योग्य विनेय को शीघ्र ही समावर्तित करते, किन्तु उससे पहिले ही वह स्वर्गीय हो गया । उसका यह स्वर्गारोहण कितना करुणोत्पादक है सहृदयों के हृदय भली तरह जानते हैं । मेरे प्रति सदा उसने प्रेम, विनय और सेवा का वही भाव दिखाया जो एक ज्येष्ठ भ्राता के हृदय में प्रमोद और वाणी में साधु-वाद के लिये पर्याप्त था । उसका अवदात्त चरित, उसकी धार्मिक रुचि, उसकी विद्या की लगन, उसका देश और समाज की उन्नति साधना के लिये अपने को तय्यार करने का दृढ उत्साह देखकर अपार प्रमोद होता था ।

हा ! समाज का यह उज्ज्वल रत्न उसके भली प्रकार परिचय में आने से पूर्व ही उठ गया। मैं उसकी जीवनी और अत्यल्प कृति का सम्पादक बना हूं यह कितना अनुचित क्रम है ! गुरुजी का यह यत्न सराहनीय है। इससे उसका नाम शेष रहेगा।

सम्पादन क्षेत्र में यह मेरा पहला क़दम है। यही मेरे अक्षमता को काफ़ी से ज्यादा प्रकट कर सकेगा। और आगे इस विषय में मुझे कोई घसीटे इस भय से मुक्ति दिलाने वाला होगा। इससे मुझे अपनी चिन्ता नहीं है, किन्तु मुझ से सम्पादन करानेवाले श्रीगुरुजी पर लोग हसेंगे, इसकी कुछ चिन्ता अवश्य है, पर मेरे पास इसका क्या इलाज है ? केवल एक सहारा दीखता है कि संकलन चाहे अच्छा नहीं पर इतनी सामग्री एकत्रित होगई है कि उससे सहृदय विवेकी को उसका जीवन समझने के लिये पर्याप्त प्रकाश मिलेगा। यह तो भविष्य के गर्भ में है कि मेरी यह धारणा मनमोदक नहीं है।

—सम्पादक

समर्पण

इन विविध ग्रन्थों के लेखक, आदर्श युवा, प्रिय बन्धु स्वर्गीय ब्रह्मचारी पं० खड्गदेव शर्मा की दिवंगत आत्मा के

कल्याणार्थ

सब कल्याणों के मूल

भगवच्चरण कमलों में

सादर समर्पित

—सम्पादक

हस्त लिपि

षड्विधा विलासेन भूतभौतिकसृष्टयः ।

स्तौमि परमात्मानं सच्चिदानंद विग्रहम् ॥१॥

यज्जौ भावनाच शब्दा बद्ध्यादयोऽपि च

येते प्रभुगुणाः सर्वे विद्वद्भिः परिकीर्तिताः ॥

॥ ॐ ॥

स्वर्गीय ब्रह्मचारी पण्डित खड्गदेव शर्मा की

जन्म कुण्डली

जन्म संवत्

१९६९ वि०

द्वितीय आषाढ़ शुक्ला

त्रयोदशी गुरुवार

रात्रि
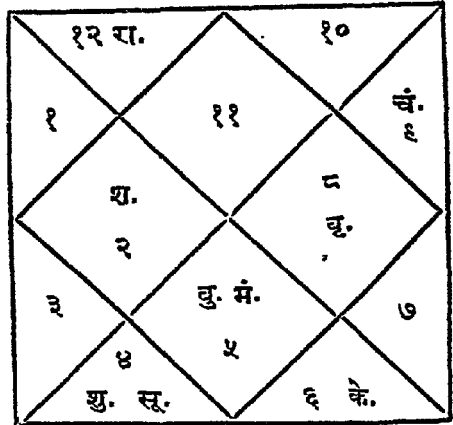
निधन कुण्डली

निधन संवत्

१९९१ वि०

मार्गशीर्ष कृष्णा

चतुर्दशी बुधवार

प्रातःकाल
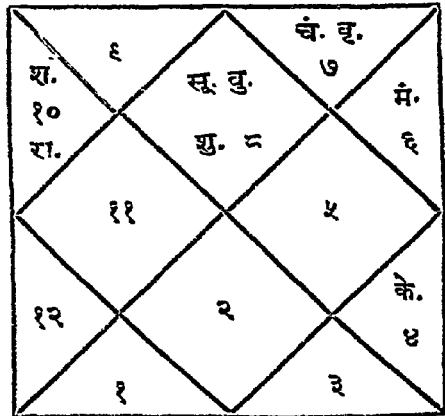
आदर्श युवा ब्रह्मचारी पं० खड्गदेव शर्मा

उपोद्घात

मैं कर्तव्य बुद्धि से अथवा लोकहित की दृष्टि से स्वयं अथवा परप्रेरित अपने शिष्य की जीवनी लिख रहा हूं। यह आत्मचरित नहीं किन्तु आत्मीय-चरित अवश्य है। मनुष्य-जीवन में छात्रावस्था का असाधारण महत्व है। मैं यह जीवनी लिखकर एक आदर्श छात्रजीवन लोक में रख सकूंगा। पर यह तभी संभव है कि मैं जीवनी लिखने में सफल हो सकूं।

मैं संन्यासी हूं, संन्यासी को कोई सांसारिक कर्तव्य शेष नहीं रहता। मन में कोई एषणा रहते संन्यास का अधिकार नहीं है। यदि संन्यासी ने समस्त एषणाओं का त्याग नहीं किया है तो उसके पतन की पूर्ण सम्भावना बनी रहती है। वैसी अवस्थाओं में संन्यास ग्रहण करना दुःसाहसमात्र है। यदि संन्यासी आत्मनिरत है—मोक्षपरायण है—तो उसका संन्यासी होना चरितार्थ है, किन्तु परार्थ-निरपेक्ष केवल-स्वमुक्ति काम संन्यासी भगवान् ने मुझे नहीं बनाया यही मेरी बुद्धिमें भगवान् ने अच्छा किया, मैं अनेक महापुरुषों का केवल इतना ही ऋणी नहीं हूं कि उन्होंने मुझे कल्याण का मार्ग बताया किन्तु उनके अनन्त असीम उपकार हैं जिनका पूरा वर्णन मेरी वर्णन-शक्ति के बाहर है। जिस प्रत्युपकार निरपेक्षा और हितकामना के साथ मुझे उन्होंने अवलम्ब प्रदान किया उससे मैं अनायास सीखा हूं कि उसी अवस्था के सांसारिक तापत्रयतप्त प्राणियों के सम्भव

उपकार से न हटूं। इसी मनोवृत्ति के कारण संन्यास अवस्था में आरम्भ ही से मेरे सहवास में आत्म-कल्याण देखने वालों के लिये मैं मुक्तद्वार रहा हूं। साधन के योग्य देश और काल में अनेक साधक, सत्संगी समय २ पर मुझे मेरे योग्य सेवा का सौभाग्य प्रदान करते रहे हैं। ये सब प्रायः अनुभव मार्ग के पथिक रहे हैं। मैं सोचता रहा हूं कि मनुष्य जीवन की सारी प्रवृत्तियां जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति की अविरोधिनी ही नहीं किन्तु यथासंभव पूर्ण अनुकूल हों, यह तभी संभव है कि मनुष्य-जीवन आरम्भ से एक अभीष्ट सांचे में ढाला जा सके। उसका क्रम कम से कम छात्रावस्था से तो अवश्य ही आरम्भ होजाय। होश संभालने पर उसे इसके लिये पछताना न पड़े कि हमें पहले यह बातें क्यों न मालूम हुईं। दुःख की बात है कि हमारे विद्यामठों की वर्तमान पठन-पाठन प्रणाली का शिक्षा के परम प्रयोजन से घोर असहयोग है। इसमें आध्यात्मिक और धार्मिक बुद्धि-विकास के लिये लेश भर क्षमता नहीं प्रतीत होती। व्युत्पत्ति चाहने वाले अच्छे छात्र किस प्रकार समस्त बुद्धिगुणों से सम्पन्न होते हुए भी इस हत प्रणाली के कारण कोई आत्म योग्यता का प्रकाश न करके छात्र-जीवन की असफलता के कारण यूं ही जीवन के फल से वञ्चित रह जाते हैं। यह देख कर मेरे मन में आया कि अधिकों का न सही एक दो का छात्रजीवन सफल करने की चेष्टा करूं। इसी चेष्टा में कालक्रम और घटनाचक्र से परीक्षितगढ़ निवासी श्री खड्गदेव शर्मा मेरा छात्र बना। उसका चरित मेरा ही प्रिय नहीं है न

वह केवल छात्रों के लिये ही आदर्श है किन्तु आरम्भ से इति तक वह छात्रों की ही तरह मुमुक्षु सत्संगियों के लिये भी शिक्षाप्रद है, पाठ है। अनेक सत्संगियों की उत्कंठापूर्ण प्रेरणा के वश में उसके जीवन की मुख्य २ व्यावहारिक विशेषताओं का संकलन करने के लिये बाध्य हूं, मैं उनको निराश नहीं करूंगा। वे भी उसके चरित्र से आकृष्ट होकर ही तो वैसी प्रेरणा कर रहे हैं। उस आकर्षण के प्रभाव से मैं भी सर्वथा नहीं बचा हूं। उसके चरित लिखे जाने में प्रेरकों को जो गुण दीखते हैं वे प्रत्येक मत्सरशून्य विवेकी को स्वीकार्य होंगे ही। हो सकता है कि मुझ से सम्बन्ध होने के कारण मेरे शिष्य के प्रति उनका स्वाभाविक पक्षपात हो, उन्हें उसके साधारण गुणों में महत्ता का भ्रम हो गया हो और मैं भी उसी दोष का शिकार हो गया हूं। इसका निर्णय मैं निर्मत्सर विद्वानों पर छोड़ता हूं।

जन्म।

विक्रम संवत् १६६६ द्वितीय आषाढ शुक्ला त्रयोदशी बृहस्पतिवार को परीक्षितगढ़ निवासी सामवेदी शाण्डिल्य गोत्रीय श्री चौ० जसरामसिंह शर्मा के गृह में एक सुन्दर शिशु ने जन्म लिया। पुत्र के जन्म से माता और पिता के हर्ष का पारावार न रहा। बड़े उत्साह के साथ ब्राह्मण कुलोचित रीति नीति के अनुसार जातकर्मादि संस्कार हुए।

खरक (गोष्ठ) में जन्म होने के कारण इस होनहार कुमार का प्यार का नाम खड़का और व्यावहारिक नाम खड्गदेव शर्मा स्थिर हुआ। चौ० जसरामजी के कोई भ्राता आदि नहीं था। खड्गदेव शर्मा उनका प्रथम अपत्य (ज्येष्ठ सन्तान) हुआ

उसके पीछे की जीवित सन्तान लग भग दश वर्ष की एक कुमारिका है। इस परिमित परिवार की जीवन-यात्रा ज़मीनदारी के मुनाफ़े से चल सकती थी. किन्तु न मालूम कब से चौ० जसरामजी की आंखें खराब हैं। इससे वे अपनी ज़मीनदारी का अच्छा प्रबन्ध रखने में असमर्थ हैं। जो हो, माता पिता में पुत्र वात्सल्य स्वाभाविक है, घर की तत्कालीन आर्थिक अवस्था के अनुसार दोनों ने अनेकों उमंगों के साथ अपने प्रथमजात शिशु के लालन पालन में अपने वे दिन बड़ा सुख से बिताये होंगे।

अध्ययन।

उचित अवस्था में ग्राम ही के मदरसे में अध्ययन आरम्भ हुआ। देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करके बालक खड्गदेव प्राइमरी शिक्षा प्राप्त करने लगे। प्राइमरी स्कूलों के अध्यापक कोई उच्च हृदय रखने वाले, चरित्रशाली सन्तोषी व्यक्ति प्रायः कम होते हैं। अतः अध्यापकों के अनुचित लोभ के कारण तथा घर की आर्थिक अवस्था हीन होने से खड्गदेव को शिक्षा के इस प्रारम्भिक काल में अनेक कष्ट सहने पड़े। खड्गदेव के पिता अध्ययन के उचित व्यय का भार किसी प्रकार उठा सकते थे किन्तु अध्यापकों की अन्धी धनतृष्णा को शान्त करने की उनमें सामर्थ्य न थी। खड्गदेव से चौथ या इनाम में अध्यापक को एक बार द्रव्य प्राप्ति नहीं हुई। खड्गदेव अधिक से अधिक तंग किया जाने लगा, वह मुर्गा बनाया जाता. उस के बेत लगतीं, उससे धूप में खड़ा रहने के लिये कहा जाता, ये दुःख ही कम न थे किन्तु यहां तक ही नहीं हुआ, हाथ की उंगलियों के बीच

में क़लम देकर उंगलियों को भींच कर उसे असह्य दुःख दिया गया। इस यातना का सहना उसकी सहनशक्ति के बाहर था। पिता के पास अध्यापकों की लोभाग्नि शान्त करने को रुपया नहीं था, विवश होकर खड्गदेव को जंगलों की शरण लेनी पड़ी। इसने छः दिन विना खाये जंगल में व्यतीत किये। बड़ी खोज के पश्चात् उसके पिता वापस लाये और अध्यापकों का अनुनय विनय करके पुनः मदरसे में भेज दिया। इसी दुःख से उसे कुछ दिन रिश्तेदारी में भी अध्ययन के लिये रहना पड़ा और जैसे तैसे अनेक कष्टों को सहन करके प्राइमरी शिक्षा पूर्ण की। पीछे माछरा ज़िला मेरठ के मिडिल स्कूल में प्रविष्ट हुआ। वहां के सहृदय हेडमास्टर स्वर्गवासी मुंशी जहांगीरसिंह शर्मा उर्दू के प्रवर कवि, उदाराशय मास्टर इन्द्रजीत शर्मा तथा विद्यार्थियों के परम सहायक उदारचेता श्री चौधरी शिवनाथसिंहजी शर्मा शाण्डिल्य ने इसकी सहायता की और इसने सन् १९३० ई० में हिन्दी और उर्दू का मिडिल पास सेकिण्ड डिवीज़न (द्वितीय श्रेणी) में कर लिया। आगे इंगलिश पढ़ने का विचार था और कुछ पढ़ना आरम्भ भी कर दिया था, इसी समय में २-६-१९३० ई० को माछरे स्कूल में पहुंचा, प्रसंगवश बात चलते हुए मैंने मास्टरजी से कहा कि जो छात्र मिडिल पास कर लेते हैं उनको नौकरी तो मिलती नहीं अपनी २ आयु का बहुत सा भाग व्यर्थ ही खोते हैं अच्छा हो आप इनको संस्कृत पढ़ने की सम्मति दिया करें ताकि इनके जीवनप्रवाह धार्मिक हो सकें। उन्हों ने मेरे सामने खड्गदेव को खड़ा किया और कहा—इसने मिडिल पास कर लिया है, बहुत नेकचलन और परिश्रमशील है, बुद्धि अच्छी है, आप इसके पढ़ने का प्रबन्ध करदें, मैंने कहा—यह अपने पिता की आज्ञा लेकर आवे तो मैं प्रबन्ध कर

दूंगा, वह शाम को अपने घर चला गया अगले दिन अर्थात् ३-६-३० ई० को वापस आया और कहा कि मेरे पिता तो इंग्लिश पढ़ाना चाहते हैं, मैंने कहा भाई हमने अकारण ही अपने शिर में खाज पैदा की थी (व्यर्थ ज़िम्मेदारी ली थी) अच्छा हुआ तुमने मिटादी और बोझ हलका कर दिया।

मैं ४-६-३० को गढ़मुक्तेश्वर चला गया, श्रावण भर वहां रहा, श्रावणी के अवसर पर मुझे खरखौदा पाठशाला की दशा चिन्तनीय है यह समाचार मिला, मैं वहां जाने को तैयार ही था कि खडगदेव श्री मास्टर इन्द्रजीतजी शर्मा की चिट्ठी लेकर आया, उसमें लिखा था कि अब खड्गदेव की समझ में आगया है वह संस्कृत पढ़ेगा आप इसका प्रबन्ध करदें। मैं उसको साथ लेकर १० अगस्त सन् ३० को खरखौदा चलागया और पाठशाला की परिस्थिति सुधारने के लिये वहीं ठहर गया, ११ अगस्त से इसको संस्कृत प्रवेशिका का प्रथमभाग पढ़ाना आरम्भ किया, एक महीने के अन्दर संस्कृत प्रवेशिका के ३ भाग और संध्यावन्दनादि नित्यकर्म सब सीख लिया। इसकी बुद्धि और सरलता को देख कर मन इसकी ओर विशेष आकर्षित होने लगा। यज्ञोपवीत कराके लघुकौमदी आरम्भ करादी और अक्टूबर में मैं खरखौदे से सिरसा जाने लगा तो इसने कहा कि मैं अब और से न पढ़ सकूंगा, मुझे दूसरे का पढ़ाना पसंद न आएगा, दुःख सुख कुछ भी हो मैं आपके साथ रहकर पढ़ूंगा, विशेष आग्रह देख कर साथ ले गया।

६ जनवरी १६३१ को इसको लघुकौमुदी समाप्त हो गई और इसके साथ ही श्रुतबोध, तर्कसंग्रह, पंचतन्त्र के ३ तन्त्र और उत्तररामचरित के एक दो अंक भी पढ़ चुका था।

१२ जनवरी १९३१ को सिद्धान्तकौमुदी प्रारम्भ की और २० जनवरी को भट्टिकाव्य का आरम्भ हुआ, एवं क्रम से न्यायसिद्धान्त मुक्तावली आदि ग्रन्थ प्रारम्भ हुए। कुछ दिन पीछे विचार हुआ कि ग्रन्थ तो पढ़ने ही हैं पंजाब यूनीवर्सिटी की परीक्षा ही क्यों न दे लें। इस विचार के अनुसार पढ़ाई परीक्षा के उपयोगी होने लगी। इन दिनों में जो सत्संगी मिलते थे वे अपने अनुभव की भिन्न २ बातें सुनाया करते थे।

एक दिन खड्गदेव ने कहा कि मैं जब स्कूल में पढ़ता था तो एक दिन जंगल में जाकर चुप चाप बैठ गया, सायं समय था, कोई साथी साथ नहीं था, निश्चित कुछ देर बैठने के बाद मुझे अपने शरीर का भान नहीं रहा और सब ओर प्रकाश ही प्रकाश प्रतीत होता था उसी प्रकाश में कुछ महात्मा लोगों के दर्शन हुए, बहुत देर में शरीर का भान हुआ और चित्त में अधिक प्रसन्नता तथा शान्ति ज्ञात होने लगी।

मैं कितने ही दिन तक इसी प्रकार कभी जंगल और कभी कमरे में बैठता रहा और बराबर भिन्न २ रूपों में भगवान् के दर्शन करता रहा।

एक दिन प्रेमवश मैंने अपने मित्र से यह बात प्रकट करदी, ज्ञात नहीं क्या हुआ उस दिन से वे दर्शन होने बन्द होगये।

मैंने इस बात को सुनकर इसे विशेष अधिकारी समझ कर उचित मार्ग का निर्देश और अनुभव कराने का यत्न किया, बात की बात में इसका मार्ग साफ़ हो गया, उसे फिर भगवान् के दर्शन होने लगे, परन्तु पढ़ाई में कुछ कमी आने लगी। मैंने कहा कि अब मार्ग साफ है यह भूल नहीं जायगा, सायं प्रातः थोड़ा २ करते रहो और विशेष समय पढ़ाई में लगाओ। ऐसा ही होने

लगा, दो वर्ष के परिश्रम से विशारद परीक्षा की तैयारी हो गई और लाहौर जाकर इञ्जीनियर लाला हुकुमचन्दजी की विशेष सहायता से विशारद परीक्षा में सम्मिलित हुआ जो १५ मई सन् १६३३ से प्रारम्भ होकर २३ मई सन् १६३३ को समाप्त हुई, उसमें सेकिण्ड डिवीज़न में पास हो गया। आगे शास्त्री की तैयारी शुरू कर दी। एक साल के कठिन परिश्रम से लाहौर पहुंच कर उन्हीं लाला हुकुमचन्दजी की विशेष सहायता से शास्त्री परीक्षा में शामिल हुआ जो २१ मई १६३४ से आरम्भ होकर २६ मई सन् ३४ को समाप्त हुई। परचे सभी अच्छे हुए थे, परिचित जनों को फस्ट डिवीज़न में आने की आशा थी, परन्तु फल उलटा हुआ और उसे काव्य के पर्चे में फेल बताया गया, इसके विषय में कुछ लिखा-पढ़ी भी हुई जिसका फल कुछ न हुआ अत: पुन: शास्त्री परीक्षा और आयुर्वेद-विशारद परीक्षा देने का निश्चय किया।

उक्त निश्चय के अनुसार फिर तैयारी शुरू हो गई। जैसा कि पहले कहा जा चुका है परीक्षा दिलाने के विचार का उदय केवल इसलिये हुआ था कि वैसे भी परीक्षा में नियत अनेक ग्रन्थ पढ़ने ही हैं तो परीक्षा क्यों न दे लें इस विचार के अधीन परीक्षा में नियत ग्रन्थ और विषयों का अध्ययन तो हुआ ही किन्तु इस सब के साथ योगदर्शन, सांख्यतत्वकौमुदी, मीमांसा परिभाषा, वेदान्त-परिभाषा, शाङ्करभाष्य सहित चार पांच उपनिषद्, मधुसूदनी टीकासहित गीता के अनेक प्रसंग उसने पढ़े। स्वयं वाल्मीकि रामायण का स्वाध्याय कर रहा था उसकी ज्योतिष शास्त्र में भी रुचि थी। मुहूर्त्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ मुहूर्त्तचिन्तामणि पीयूषधारा टीका की सहायता से उसने पूरा तैयार कर लिया था। कर्मकाण्ड के ग्रन्थ भी देखता था।

उसने आयुर्वेद के कई ग्रन्थ ही नहीं पढ़े वरन् अनेक रोगों के प्रायः ग्रन्थ वाह्य अनुभूत योग भी बहुत से लिखे हैं। उसने हिन्दी के प्रसंगोपलब्ध सामायिक अनेक पुस्तकें पढ़ीं।

इस सब के साथ ४ वर्ष के स्वल्प काल में उसने जितना लिख छोड़ा है उसका कम महत्व नहीं है। उससे उसकी अद्भुत क्रियाशक्ति का अच्छा परिचय मिल सकता है। उसकी अध्यात्म सुरुचि का यह प्रमाण है कि अध्यात्म चर्चा छिड़ने पर अनन्य मन से सुनता था। प्रत्येक अध्यात्म रहस्य बड़ी सरलता से उसे हृदयंगम हो जाता था। वह उसकी गहराई तक अतिशीघ्र पहुंच जाता था। उसकी इस योग्यता को देखकर पं० चिदानन्दजी ने कई वार उसके विशेष व्यक्ति होने की वात कही थी। थोड़े में मैं कहूं तो कह सकता हूं कि वह अति निकट भविष्य में सब विषय में मेरा पूर्ण प्रतिनिधि तैयार हो रहा था। किन्तु जिसका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता था वह हृदय दहलाने वाली दुर्घटना घटकर अटल हो गई। अब आगे हृदय थाम कर उसे भी सुन लीजिये हम संवत् १९९१ विक्रमीय की वर्षा ऋतु में गढ़मुक्तेश्वर थे। मेरा स्वास्थ्य खराब था, परन्तु खड्गदेव को कोई किसी प्रकार की शिकायत नहीं थी, भाद्रपद में उसके पैर में एक छोटी सी गूमड़ी होगई थी वह कुछ दिन में बढ़कर १ इञ्च का चौड़ा व्रण बन गई, मेरे विशेष कहने पर उसकी चिकित्सा भी शुरू हुई, परन्तु किसी विशेष कार्यवश उसको अपने घर जाना पड़ा, चलने फिरने से वह व्रण और अधिक बढ़ गया जिसके कारण उसका टहलना और कसरत करना बन्द होगया, शरीर कुछ सुस्त सा रहने लगा, मैंने कई वार सुस्ती का कारण पूछा तो यही बताया कि कसरत और टहलना बन्द होने के कारण

शरीर कुछ सुस्त सा रहता है कोई विशेष कष्ट नहीं है, मेले के दिनों में खान पान का शक्ति भर पूरा ध्यान रक्खा गया, मुझे उसकी परीक्षा और कुछ प्रेमी जनों के आग्रह के कारण रावलपिण्डी जाना था, लाला हुकुमचन्दजी के आग्रह से यह भी निश्चित हुआ कि रावलपिण्डी जाते हुए एक दो दिन लाहौर भी ठहरें इसके लिये तारीख २६ नवम्बर सन् २४ निश्चित होगया, चलने से दो दिन पूर्व अर्थात् २४ नवम्बर को खड्गदेव के गले में कुछ खराश प्रतीत होने लगी, उसने रात को गरम जल पिया, २५ नवम्बर को रविवार था, रविवार को वह सदा ही अनशन किया करता था अतः इस रविवार को भी अनशन किया और गरम जल पिया, साधारण ख़राश के अतिरिक्त न कोई कष्ट था न शरीर में किसी प्रकार की निर्बलता थी, सोमवार की प्रातः से ही चलने की तैयारी होने लगी, मैंने पूछा अगर शरीर में कोई कष्ट है और सफ़र करने की हिम्मत न हो तो हम तारीख बदल देते हैं, शरीर ठीक होने पर चलेंगे, उसने कहा कि नहीं मुझे कुछ कष्ट नहीं है. न मैं बीमार हूं समय व्यर्थ नष्ट हो रहा है, जल्दी चलना चाहिए। एक स्थान पर बैठ कर निश्चिन्त होकर तैयारी करेंगे. और २६ को दोपहर की गाड़ी से देहली को रवाना होगए, इस दिन भी इसने कुछ अञ्जीर और दूध ही लिया था अन्न नहीं खाया था। देहली में गाड़ी बदली, टिकिट लेकर हम भटिण्डा से लाहौर आने वाली गाड़ी पर सवार होगए, उसने रात्रि को भी ऽ॥ सेर दूध पिया था और दो अनार खाए थे, ऊपर की सीटों पर बिस्तर बिछाकर हम सो गए। जब गाड़ी भटिण्डे से आगे निकल गई तब उसने मुझे जगाया कि मुझे बहुत तेज़ ज्वर होगया है, मैंने मुंह में डालने के लिए लौंग देदी और कहा कि लेट जाओ लाहौर पहुंच कर जो कुछ होगा

करेंगे। लाहौर पहुंचते २ गला बैठ गया और शरीर में विशेष निर्बलता प्रतीत होने लगी, २७ को १० बजे के लगभग माडल-टाउन पहुंच गये, चिकित्सा आरम्भ होगई, जुकाम खुश्क हुआ समझ कर बनफ़शा आदि पिलाना शुरू किया जिससे जुकाम कुछ बढ़ने लगा और गला भी खुल गया, इसी दिन एक वृद्ध डाक्टर भी मिलने आए थे उन्हें दिखाया उन्होंने कहा कि मेरी राय में इन्फ्लुएंज़ा हुआ है, वैद्यजी ने इन्फलुएंज़ा और जुकाम दोनों का ध्यान रखते हुए चिकित्सा की, दो दिन नज़ला बढ़ कर फिर बन्द होगया और ज्वर बढ़ता गया अब विशेष सावधानी से चिकित्सा होने लगी, रात्रि को भी लोग जागते रहते थे, उसकी चारपाई मैंने अपने पास बिछ्वाई, हम सावधानी के लिए ही सब कुछ कर रहे थे न तो इतनी कमज़ोरी ही थी कि वह चारपाई से उठ न सके और न बेहोशी ही थी, ज्वर के सिवाय शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा न थी, खुश्क खांसी थोड़ी २ देर के पीछे उठती थी, ३० तारीख तक जब कोई विशेष लाभ प्रतीत नहीं हुआ तो १ लोकल डाक्टर गुरुचरणसिंह को दिखाया और पूछा कि आप भली प्रकार देख कर यह बताइए कि फेफड़ों में नमूनिया का तो कोई असर नहीं है, उन्होंने खूब देखभाल कर कहा कि फेफड़े बिलकुल साफ़ हैं नमूनिया नहीं है, परन्तु ज्वर १०६ डिग्री है इसे कम करना आवश्यक है डर है कि इसका प्रभाव मस्तिष्क पर न पड़ जाय, मैं ज्वर कम करने की पुड़िया दूंगा उससे ज्वर कम हो जायगा और दूसरी दवा ज्वर को पचाने की होगी। मैंने कहा—ज्वर को कम करने वाली पुड़िया दिल को कमज़ोर किया करती है मुझे ऐसी पुड़िया देने में सङ्कोच है, उन्होंने कहा कि आप निश्चिन्त रहें मैं उसमें दिल के लिए काफ़ी

रिआयत कर दूंगा, उनके कथनानुसार दवाई आरम्भ होगई, दो पुड़िया देने के बाद ज्वर कम होगया, दूसरी दवाई भी पिलाते रहे, रात को एक पुड़िया और दी जिससे रात भर कुछ शान्ति रही एक बड़ा धोखा यह लगा कि रात को ज्वर देखने के लिए हमारे पास जो थरमामीटर था वह खराब था, ज्वर को वह ठीक २ नहीं बताता था जिस ज्वर को हम १०२ समझे थे वह ३ री के प्रातः डाक्टर के देखने पर १०७ डिग्री था अब चिन्ता और भी बढ़ गई उसी समय डाक्टर भक्तरामजी को फ़ोन किया गया उन्होंने कहा कि मैं समय मिलने पर आता हूँ दिन में बुखार और तेज़ होता हुआ देख कर और दूसरा कोई साधन न पाकर दुःख मानते हुए भी ज्वर कम करने की वही पुड़िया फिर दी गई ज्वर कम हो गया, परन्तु निर्बलता बढ़ती गई, रात को ६ बजे डाक्टर भक्तरामजी आए उन्होंने देखा तो कहा कि इसके दोनों फेफड़े बलगम से भर गए हैं, सख़्त नमूनिया है, इन्फ्लुएंजा बिगड़ कर इस हालत में पहुँचा है, अवस्था चिन्ताजनक है, मैं दिल की निर्बलता मिटाने के लिए एक इन्जैक्शन देता हूं और दिल की मज़बूती और बलगम निकालने के लिए एक दवा देता हूं ४-४ घन्टे बाद दी जायगी, ज्वर अपने समय पर उतरेगा इसकी हमें चिन्ता नहीं है, इंजैक्शन दिया गया दवाई भी देनी आरम्भ कर दी, रात्रि को बेहोशी और प्रलाप होगया प्रातःकाल डाक्टर साहब को फिर फ़ोन किया गया उन्होंने कहा प्रलाप हमारी दवाई के प्रभाव से हुआ है मैं समय मिलने पर देखने को आऊंगा । श्री लाला हुकुमचन्दजी का विचार हुआ कि इसकी माता को शीघ्र से शीघ्र ही बुला लिया जाय इसके लिए भी चौधरी रघुवीरनारायणसिंहजी शर्मा रईस असौड़ा को तार दिया गया कि अपने

आदमी के साथ उसकी माता को भेजदें। श्री लाला हुकुमचन्दजी डाक्टरजी के घर पर जाकर मिले और सारी व्यवस्था कहकर देखने के लिए कहा—उन्होंने कहा कि सायंकाल को आऊंगा दिन भर मर्ज़ की हालत में कुछ बेहतरी प्रतीत होती रही नींद भी आई मुझ से बहुत अच्छी तरह बातें भी करता रहा एक बात से, जो उसने कही थी, प्रतीत होता था कि उसे अपने जीवन की आशा नहीं रही है वह यह थी (रावलपिण्डी जाना रह ही गया) मैंने कहा कि नहीं तुम्हें आराम आजाने पर चलेंगे और भिन्न२ प्रसंगों की बात करते हुए यह भी कहा "मुझे यह भी मालूम होगया है इंजीनियर साहब के साथ हमारा पुराना सम्बन्ध अवश्य है" शाम को डाक्टर भक्तरामजी आए और देख कर कहने लगे—दिल की हालत अच्छी है बलग़म में दो आने की कमी है, दवा यही है जो आप देरहे हैं इसमें दिल को बल देने और बलग़म को निकालने की ताक़त है, यही देते रहें, आगे के लिए व्यवस्था कल करेंगे ज्वर इस समय भी १०४½ था वे सब बातें समझा कर चले गए, रात्रि के नौ बजे गले में कफ़ की कुछ आवाज़ होने लगी ऐसी ही आवाज़ पहले भी, जब कि बीमारी का सातवां दिन था, हुई थी, उस दिन खांसने मठारने उंगली आदि देने से थोड़ा २ कफ़ निकल गया था आज भी पहले डाक्टरजी की दवा दी उससे भी कफ़ नहीं हटा, खांस मठार कर निकालने का बहुत प्रयत्न किया गया परन्तु सब निष्फल हुआ, वैद्यक की दवाई भी व्यर्थ हो गई ११ बजे से पहले एक दस्त हुआ, कमज़ोरी बहुत बढ़ गई कफ़ श्वास में बहुत रुकावट डालने लगा, हमारी आशा ने निराशा का रूप धारण किया, मैं अपने आसन पर बैठ गया था और कविराज सरदारीलालजी उसके पास बैठे थे, सरदारीलालजी से कहा—'स्वामीजी को बुलाओ' मैं उठ कर

गया मेरी ओर देख कर कहा कि मैं आपकी स्तुति करता हूं, मैंने कहा 'स्तुति प्रभु की करनी चाहिए वे ही तुम्हारा संकट दूर करेंगे', किंचित् रुक कर हाथ जोड़ कर संकेत किया कि मुझे क्षमा करना मैंने कहा-'क्षमा आदि व्यवहार सब भेद में होता है जब मेरा तुम्हारा व्यवहार अभिन्न रहा है तो क्षमा कैसी, चिन्ता न करो तुम चलो फिर कहीं मिलेंगे इधर का विचार छोड़ दो वृत्ति को ऊंचा लेजाओ और ॐ का उच्चारण करो' उसने अपने शिर पर हाथ रख कर संकेत किया कि आशीर्वाद दो मैंने शिर पर हाथ रख कर कहा-'भगवान् तुम्हारा कल्याण करे।'

उसने कहा उच्चारण के लिये ज़बान नहीं लौटती कालीमिर्चें लगाएं मैंने कहा अदरकरस मौजूद है उसे मलो वह एक खास दवा मिला कर मला गया जबान कुछ लौटने लगी, उसने श्वास के साथ ॐ का उच्चारण आरम्भ किया वृत्ति को ऊपर लगाया, आंखें ऊपर को लौट गईं, मैं, कविराज सरदारीलाल, श्री लाला हुकुमचन्दजी की धर्मपत्नी तथा एक सिक्ख सज्जन सब ने मिल कर ॐ हरि ॐ ऐसी ध्वनि प्रारम्भ की, बीच २ में कईबार जब मुझे यह सन्देह होता था कि शायद बेहोशी न हो कुछ अधिक ज़ोर से ॐ उच्चारण करता था तो उधर से भी ज़ोर से उच्चारण करके प्रत्युत्तर मिलता था, इस समय में केवल दो बार आंख की पुतली नीचे उतरी और मेरी ओर ध्यान से देखा, मैंने फिर सावधान किया और वृत्ति ऊंची करने का संकेत किया वह फिर उसी अवस्था में पहुँच गया, ४ बजे के क़रीब लाला हुकुमचन्दजी भी वहां आगए और हमारी हरि ॐ की ध्वनि में सम्मिलित हो गए, मैं उसके चहरे पर दृष्टि दिए बैठा रहा और जब २ बेहोशी का सन्देह हुआ तब तब ज़ोर से

उच्चारण किया और उधर से भी वैसा ही प्रत्युत्तर मिला, बिजली के प्रकाश को हमने कपड़े से मन्द कर दिया था इसी बीच में मुझे २-३ बार उसके चेहरे की ओर से दक्षिण की दीवार पर छोटे टार्च जैसा प्रकाश पड़ता प्रतीत हुआ दिल बराबर अपना काम कर रहा था, नब्ज़ ठीक चल रही थी, ७ बजने में जब कुछ ही मिनिट शेष रहे थे तो नब्ज़ एक दम बन्द हो गई और टांग में कुछ कम्प हो कर प्राण ऊपर जाने लगा, श्वास की गति अब बहुत ही कम रह गई थी कभी २ आता था उसमें भी ध्यान देने से ॐ की ध्वनि प्रतीत होती थी। ठीक सात बजे पर अन्तिम श्वास लिया और जीवन-लीला को समाप्त कर दिया। अन्तिम श्वास के समय वही प्रकाश, जो मैंने दीवार पर देखा था, श्री लालाजी की धर्म-पत्नी को छत में दिखाई दिया, बस अब उसकी अन्तिम क्रिया का यत्न होने लगा, आदमी सामान लेने के लिए लाहौर भेजा गया, लालाजी का विचार था, अपने परिचित सब आदमियों को खबर की जाय, परन्तु मैंने कहा कि जो समाचार पाकर अनायास आजाय वह सम्मिलित हो जायगा, ६॥ बजे सनातनधर्म के अनुसार उसकी अर्थी तैयार करके ले चले, साथ में कितने ही प्रतिष्ठित और विद्वान् महानुभाव थे, विधिपूर्वक दाह करके चले आए, ७ दिसम्बर को फूल चुन कर राख दरियाव रावी में भेज दी गई और अस्थियां हरिद्वार हर की पैड़ियों पर विधि-पूर्वक प्रवाह करने के लिए ब्रह्मचारी रामरक्खामलजी के पास भेज दी गईं जिसकी आज १२ दिसम्बर १९३४ को सूचना भी मिल गई है। यह जिस व्यक्ति की जीवनलीला है वह स्वभाव का नम्र, प्रसन्नचित्त, सत्यवादी, सच्चरित्र, कर्मनिष्ठ, वेद और ईश्वर पर पूरा विश्वास रखने वाला २२॥ साल का युवक था।

४ वर्ष ३ महीना २४ दिन मेरे पास रहा है मैंने उसका कोई व्यवहार ऐसा नहीं देखा जिसका धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध न हो, मैं विशेष क्या कहूं जिन लोगों ने उसे देखा है वे जानते हैं। दुःख इतना ही है कि उसके जीवन का लोक के लिए कोई सदुपयोग न हो सका, परन्तु यह सन्तोष की बात है कि उसकी मृत्यु ऋषिजनोचित हुई इसके वियोग से परिचित जनों की जो दशा हुई वह प्रत्येक का हृदय जानता है। उसके नेत्रविहीन पिता और एक पुत्रवती माता की क्या अवस्था हुई होगी यह प्रभु जानें। भगवान् से सविनय प्रार्थना है कि उनको शान्ति प्रदान करे। हम से उनका क्या बन सकता है।

श्री लाला हुकुमचन्दजी और उनके परिवार ने उसके जीवन-काल में और मृत्यु के समय जो व्यवहार किया वह वही था जो कि एक सच्चा पिता अपने पुत्र के लिए कर सकता है।

उपसंहार

खड्गदेव का छात्र-जीवन समाप्त नहीं हुआ था कि वह समाप्त हो गया। उसने अपना बालजीवन निर्दोष बालक्रीडा में और उसके अनन्तर विद्या प्राप्ति योग्य अवस्था प्राप्त होने पर अध्ययन में बिताया। छात्रजीवन कितना पवित्र है, कितना घोर तपस्या का है, कितना महान् है विज्ञजनों से यह छिपा नहीं है। राष्ट्र की सब प्रकार की उन्नति का मूल हमारे युवकों का सफल छात्रजीवन ही तो है। हमारे कर्तव्य विवेक की परीक्षा इस में है कि हमारी छात्रों में कितनी आस्था है। हमने अपनी समझ में खड्गदेव का संक्षिप्त जीवन लिख कर एक आदर्श छात्रजीवन प्रस्तुत किया है। वह एक योगभ्रष्ट जीव जन्मा था। जिसके जन्म देने में सबके जन्मदाता का अभिप्राय उसके पूर्व जन्म के

कर्तव्यशेषं की पूर्ति तो था ही। साधकों के लिये अन्तकाल की धारणा का एक उज्ज्वल दृष्टान्त रखना भी प्रत्यक्ष सिद्ध है। उसका जीवन-नाटक जहां समाप्त हुआ वह लोकदृष्टि में अतिकरुण है। उसकी सब के मन में कसक है पर भगवान् अपने विधान को आप ही जानते हैं। हमारी दृष्टि में तो उन्मादकरी युवावस्था का और अति दीन और विडम्बना-पूर्ण वृद्धावस्था का कोई विशेष मूल्य नहीं है। करने वाला अपना काम यौवनोन्माद के पहले भी पूरा कर सकता है अस्तु जैसा कि अभी कहा है हमारे विवेक की कसौटी छात्रों के प्रति आस्था में है, वैसी आस्था उचित मात्रा में मैंने रायसाहब लाला हुकुमचन्दजी में पाई। खड्गदेव की जीवनी में अब तक उनकी जितनी चर्चा आई है वह अपर्याप्त है। उसको कुछ विस्तार से देना उचित है। जीवनी में आ चुका है कि खड्गदेव ने विशारद परीक्षा और शास्त्री परीक्षा लाहौर में आप ही के मकान पर रह कर दी थी। आपका खड्गदेव के प्रति एक आदर्श व्यवहार था। लालाजी उसे दूध पिला कर अपनी कार में परीक्षाभवन में पहुंचाते थे और उसी में उसकी वापसी होती थी। परीक्षाभवन से निकलते ही दूध या फल जुटे प्रस्तुत किये जाते थे। उसके सब प्रकार के आराम और सुभीते का पूरा ध्यान रक्खा जाता था। उसे कई २ मास परीक्षा के प्रसंग में मेरे साथ लालाजी के मकान पर रहने का सुयोग हुआ। लालाजी उकताने के स्थान में उसे देखकर अपने १७ वर्षीय मृत-पुत्र प्रेमनाथ को परलोक से वापस आया समझते थे उनका उसमें वही भाव, वही प्रेम था जो अपने प्रियपुत्र प्रेमनाथ में था। इसके मरने पर उन्होंने ठीक ही कहा कि मेरा प्रेमनाथ का घाव दोबारा ताज़ा होगया। लालाजी की धर्मपत्नी लालाजी के अनुरूप ही हैं, अतः पृथक् इनके लिये

क्या लिखूं। लालाजी के समस्त परिवार का व्यवहार बड़ा ही आत्मीयता पूर्ण है। हम उनके लिये साधुवाद दिये बिना नहीं रह सकते। जीवनी में लालाजी की चर्चा न करना मृतात्मा के प्रति अन्याय रहता क्योंकि उसकी भी लालाजी और इनके परिवार में कम आस्था न थी।

सोमतीर्थ दण्डी

खड्गदेव के जीवन की व्यावहारिक विशेषता

(१) उसके व्यवहार में किसी को सताने, दवाने या मारने का भाव कभी नहीं आता था।

(२) मैंने उसके व्यवहार में कभी भी झूठ का लेश तक नहीं देखा।

(३) कभी किसी प्रकार का स्तेय मेरी दृष्टिगत नहीं हुआ। सब कुछ उसके हाथ में रहते भी वह पूरी सावधानी से काम करता था।

(४) ब्रह्मचर्य का उसको इतना अधिक ध्यान था कि उसके विघातक किसी प्रसंग का भी समर्थन वा अनुमोदन नहीं करता था, विवाह तक की चर्चा को सुनना नहीं चाहता था।

(५) संग्रह से बहुत बचता था, मिलती वस्तु लौटाना तो उसके लिये साधारणसी बात थी आग्रहपूर्वक देने पर उसको काम न लाना उसके व्यवहार में प्रायः था, विस्तर होते हुए भी खड़ेड़ी चारपाई पर सोना, मच्छरदानी

होने पर भी न लगाना यह सब ऐसी बातें थीं हरिभजनजी के दिये जूते और रेशमी साफे की तह तक नहीं खुली है।

(६) शुद्धि का इतना ध्यान था कि इतना प्रायः छात्रों में नहीं देखा जाता, शारीरिक, मानसिक, वाचिक व्यवहार की पवित्रता का नमूना यदि कोई मुझ से पूछता तो उसके जीवन में मैं उसको पेश करता।

(७) सन्तोषी इतना था कि कभी उसने मुझसे किसी वस्तु की चाह प्रकट नहीं की, जैसा खाना, जैसा वस्त्र, जैसा स्थान दे दिया उसी में प्रसन्नता से निर्वाह करता था।

(८) सप्ताह में रविवार उसके अनशन का दिन था और वह नया नहीं मेरे पास आने से पहिले ही जारी था। अन्य भी व्रत जो सनातनधर्म के अनुसार आते रहते हैं बड़ी श्रद्धा से करता था, शीतोष्ण का सहन भी काफ़ी करता था, मेरे साथ गढ़ से हरद्वार तक पैदल गंगाजी के किनारे २ यात्रा नंगे पैर की थी।

(९) वेद के वे सब सूक्त, जो शास्त्री परीक्षा में नियत हैं, संध्या के बाद कण्ठ से पाठ करता था, गंगालहरी, महिम्न-स्तोत्र और कितने ही स्तोत्र नित्यप्रति पाठ करता था, संध्या के अतिरिक्त एक माला गायत्री की और एक सरस्वती मंत्र की भी उसके नित्य कर्म में सम्मिलित थी, कभी २ खास अवसर पर हवन भी करता था, कर्मकाण्ड में बड़ी रुचि थी, संस्कारों का उसकी दृष्टि में बड़ा महत्त्व था यहां तक कि वैद्यक शुरू तब की जब सुश्रुत के अनुसार अपना नया यज्ञोपवीत करा लिया। आगे रस प्रक्रिया के लिये रसरत्नसमुच्चय के अनुसार दीक्षा

का विचार, जिसमें लाखों की संख्या में जप करना पड़ता है और महीनों का काम है, परीक्षा के कारण इसे पीछे करने का विचार था।

(१०) ईश्वरविश्वास कितना था यह तो उसकी मृत्यु से साफ प्रकट है जो रोगी कठिन रोग से पीड़ित है, मरणासन्न है उसको कितनी बेचैनी होगी इसका अनुमान अनुभवी कर सकते हैं। जिस समय मुझसे अन्तिम वार्तालाप हुआ और मैंने अपनी ओर से ध्यान हटा कर प्रभु की शरण में जाने को कहा एकदम वृत्ति लौट गई जप श्वास के साथ आरम्भ हो गया, आठ घन्टे में केवल १ बार दाहिने हाथ में प्राण के उत्थान के झटके से गति हुई थी और ऐसी ही दो बार टांग में और पीछे जब शरीर छूटने लगा एक टांग में कुछ कंप और दो बार नीचे दृष्टि उतार कर मुझको देखने के सिवा कोई चेष्टा शरीर में नहीं हुई। सांस ही चलता प्रतीत होता था शेष अङ्ग इतने निश्चेष्ट थे कि मानो उनसे आत्मा का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा यहां तक की खांसी तक उठनी बन्द हो गई।

(११) गुरुभक्ति इतनी अटल थी कि उसने यह चार साल जिस व्यवहार और नम्र भाव से व्यतीत किये हैं इस समय ऐसा करने वाला असंभव ही प्रतीत होता है।

(१२) शारीरिक बल कितना था इसका अनुमान मैं पहिले तो अपने शरीर पर ही करता था, कभी कभी प्रेमावेश में आकर मुझे कौली भरकर भींचने लगता उस समय उसका भींचना असह्य हो जाता था, मैं कभी सोचता था

इसके शरीर में बल अधिक, कभी समझता था मेरा शरीर निर्बल है, इसलिये सह नहीं सकता, परन्तु ठीक २ पता एक घटना से लगा जो इस प्रकार है—

कार्तिक में धर्मशाला में एक कम्पनी आकर ठहरी जो मोटर रोकना, छाती पर पत्थर तुड़वाना आदि चमत्कार दिखलाती थी, वह युवक जो यह काम दिखलाता था इसके कमरे के सामने आकर अपने खेलों की बात कहते हुए उन सबको योग की सिद्धि बताने लगा, खड्गदेव ने कहा-भाई तुम तमाशा दिखाओ, बल की बात कहो, योग को बदनाम न करो योग बल और वस्तु है तुम्हारे अन्दर वह सामर्थ्य नहीं है न तुम उसको जानते हो, उस युवक ने जोश में आकर कहा—हमारे अन्दर वह सामर्थ्य है कि तुम्हारे जैसे कई को उठाकर फेंक दें, खड्गदेव पुस्तक पढ़ रहा था पुस्तक रख दी और उठकर उस युवक का हाथ पकड़ लिया और कहा कि ज़रा छुड़ा तो लो उसने ज़ोर लगाया परन्तु छुड़ा न सका दूसरों ने छुड़वाया, यह घटना जब गिरधारी के द्वारा मुझे ज्ञात हुई तो मैंने समझाया कि बल तुम्हारी सम्पत्ति है वह दिखाने की वस्तु नहीं है ऐसा करना शक्ति का दुरुपयोग है, बोला भविष्य में ऐसा कभी न करूंगा इस घटना से निश्चय हो गया कि मेरी निर्बलता नहीं वास्तव में बल ही उसके शरीर में था।

(१३) परोपकार भाव—मेरे पास आने वालों की वह कितनी सेवा करता था यह उनके हृदय ही जानते हैं, मेरा विश्वास है कि इतनी सेवा दूसरे से होना कठिन है,

फिर भी कई महानुभावों के विचार इसके व्यवहार के लिये यह थे कि वह हमारा तिरस्कार करता है यह बात जान कर भी उनके प्रति खड्गदेव के मन में कोई विकार नहीं आया। मेले के दिनों में रेत में अटकी हुई गाड़ी विना मेरी सूचना के ही घण्टों तक निकलवाता रहता था, मुझे यह बात भी पीछे ही ज्ञात हुई।

(१४) उसके जीवन की विशेषताओं को मैं कहां तक कहूं, सब कहीं हो नहीं जातीं, विशेषता क्या वह स्वयं विशेष ही व्यक्ति था। कई महानुभावों का विचार है कि उसके सद्गुणों का गान करें और एक महानुभाव, जो उससे तीन वर्ष से परिचित थे, उसके साथ टहलने आया करते थे उसके साथ कुछ ग्रन्थ भी पढ़ते थे उनकी तो सूचना भी आई है कि मैं खड्गदेव के भावी विचार क्या थे इस विषय में लिखूंगा। वे हैं कविराज सरदारीलालजी वैद्य लाहौर।

(१५) झगड़े से कितना बचता था यह इससे प्रकट है कि अपनी मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व घर जाकर किसी खान-दानी के साथ वर्षों से चलते हुए मामले का काफ़ी नुक-सान उठाकर फ़ैसला करा दिया।

सोमतीर्थ दण्डी

खड्गदेव के प्रति कुछ महानुभावों के हार्दिक भाव—

१—श्रीमान् फ़िदाजी (काशीनाथजी)—

अज़ीज़ ब्रह्मचारी खड्गदेवजी की अचानक मृत्यु के समाचार से जैसा दुःख हुआ दिल ही जानता है. कैसा शकील, जमील, होनहार, नेक और नौजवान प्यारा फौरन जुदा होगया, क्या खबर थी कि ऐसी दुर्घटना भी होने वाली है जोकि आपको कुछ न कुछ संकट ज़रूर पहुंचायेगी।

२—श्रीमान् चौ० रघुवीरनारायणसिंहजी शर्मा रईस असौढ़ा—

जिस समय से आपका पहला तार मिला उस समय से खड्गदेव की शकल आंखों के सामने खड़ी है, उसका खूबसूरत और भोला चेहरा, उसकी नम्रता, मुस्कराहट, एक २ याद आती है। मेरा और उसका कुछ अधिक सम्बन्ध भी नहीं रहा मगर न मालूम क्यों उसकी ज़िन्दगी में इतना ध्यान उसका नहीं हुआ जितना अब रहता है।

३—पं० दिलीपदत्त शर्मा उपाध्याय—

ब्रह्मचारी खड्गदेवजी के वियोग का सूचक दारुण समाचार आपके पत्र से ज्ञात हुआ था⋯⋯

स्वर्गीय ब्रह्मचारी की स्मृति ने अतीव कष्ट दिया, कई दिन तक ध्यान में भी चित्त ने उस भव्य मूर्त्ति को ही ध्येय रक्खा, मृत्यु समाधि की अवस्था में हुई यह जान कर उसकी अलौकिक शक्ति का परिचय मिला। निगूढ शक्ति का परिचय भी प्रायः उसी अवस्था में ठीक २ होता है। उसकी मृत्यु के विषय

में सविस्तार लिखने की कृपा करें, उसकी जिज्ञासा है।

४—पं० मथुराप्रसादजी शर्मा खरखौदा—

प्रियवन्धु श्री खड्गदेव शर्मा की मृत्यु का दुःखद समाचार मिला। यह ऐसा वज्रपात है जिसकी कल्पना भी न थी। यह दुर्घटना घट गई, यह अप्रतिकार्य स्थिर अभाग्य है कि वह रत्न हमसे सदा के लिये छिन गया। उसकी सद्गतिसूचक अन्तिम दशा को देखते वह अशोच्य है शोच्य तो यह अभागा समाज है।

५—श्री ब्र० रामरक्खामलजी गुरुकुल कांगड़ी—

हृदयविदारक प्रिय खड्गदेव के शरीरान्त का समाचार सुना, नाना प्रकार के विचार मन में उठे। एक बार मैं उसे मिल लिया होता तो बेहतर होता। अस्तु मैं तो उसकी दिवंगत आत्मा से भी क्षमा याचना करता हूं। अस्थियां प्राप्त हो गईं और उन्हें मैंने अपने हाथों से विधिवत् हर की पैड़ी पर प्रवाहित कर दिया। होसके तो समाचार लिखिए।

६—पं० रामावतार शास्त्री विद्याभास्कर—

ब्रह्मचारी खड्गदेवजी के निधन समाचार से दुःख हुआ। ईश्वर की इच्छा।

७—श्री १०८ स्वामी नारायणहरीजी महाराज मुलतान—

कृपापत्र मिला, हाल जाना गया। खड्गदेवजी की अन्तिम गति योगी जनोचित पढ़कर आनन्द हुआ। थोड़ा यह ख्याल तो जरूर आया कि यदि शरीर का कुछ भोग और होता तो बाक़ी भी रही हुई कमी पूरी करलेता, लेकिन परमपिताजी ने यह ही ठीक माना और होता भी वह ही ठीक है। यह पता न चला कि उसको क्या रोग हुआ।

८—भक्त धर्मचन्दजी—

आज मुलतान से पूज्य प्रोफ़ेसरजी के पत्र से ज्ञात हुआ कि श्रीयुत पूज्य आदर्शमूर्ति खड्गदेवजी भौतिक शरीर त्याग कर परमधाम को सिधारे हैं सो यह घटना सुनकर आप की सेवा में यह पत्र लिखा है कि उसके परम भाग्य थे कि आपके चरणों में काफ़ी काल से प्राप्त होकर अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सके विशेष कर अन्त समय में आपके समक्ष ही भौतिक शरीर को छोड़ा जिससे उनको लक्ष्य पर निर्विघ्न स्थिति प्राप्त हुई होगी जैसे स्वामी सत्यानन्दजी को बड़े महाराजजी के चरणों में हुई। कोई उपदेशजनक घटना कृपा करके लिख सकें तो लिखें।

९—श्री १०८ स्वामी कल्याणदेवजी महाराज—

कृपापत्र मिला होनी बलवान है, मनुष्य कुछ विचार करता है, भगवान् का विधान कुछ अन्य ही होता है, यह उनके विधान में ही सन्तोष करे तो भला है, क्योंकि हमारे सर्वहितैषी पिता तो सदा हमारा हित ही करते हैं, परन्तु ऐसा विचारने पर भी बहुधा मन धीर नहीं पकड़ता, अच्छा दयालु पिता ही मन को सन्तोष प्रदान करने वाले हैं कृपया पूर्ण वृत्तान्त लिखें।

१०—रायसाहब लाला हुकमचन्दजी इञ्जीनियर लाहौर—

जिस दिन से खड्गदेवजी का शरीर छूटा है हम लोगों के दिल ठिकाने नहीं आये, भगवान् कृपा करें।

११—श्री ईश्वरदासजी नय्यड़ गुजरात—

खड्गदेवजी की मृत्यु का समाचार पढ़कर बहुत दुःख हुआ

है। वह सुशील विद्यार्थी था और उनसे देशसेवा की बड़ी आशा थी। प्रभु उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। मुझे इस बात का भी बड़ा दुःख है कि खुद अस्वस्थ होने के कारण उनके अन्तिम दर्शन न कर सका। मेरे घर से भी, जिन्होंने एक बार उनको देखा था, बहुत शोक प्रकट करते हैं।

१२–चौ० शिवनाथसिंह शर्मा शाण्डिल्य रईस माछरा

प्रिय खड्गदेव के देहावसान से जो शोक हुआ उसके लिखने में असमर्थ हूं। आप तो ज्ञानी हैं पर हम जैसे लोगों के लिए यह दुःख वास्तव में असह्य हो जाता है। पर खैर जो कुछ होना था सो होगया अब हो ही क्या सकता है।

१३–पं० रमेशचन्द्र शास्त्री संस्कृत-प्रोफ़ेसर बी० एन० एस० डी० कालिज कानपुर–

चिरकाल के बाद आपका शोकसमाचार का पत्र मिला, खड्गदेवजी आपके सत्सङ्ग से जो अध्यात्म ज्ञान प्राप्त किया उससे उनकी निस्सन्देह सद्गति हुई है। इस प्रकार की मृत्यु की लोग स्पर्धा करते हैं। संसार कण्टक में फँसे हुए लोग जिस उत्कृष्ट परम भाव की कल्पना नहीं कर सकते वह सच्चे गुरु की दीक्षा से सहज ही प्राप्तव्य है इसमें सन्देह नहीं। ईश्वर जगत्पालक स्रष्टा ने खड्गदेवजी को जलविन्दु को समुद्र के समान ऐक्य कर लिया लेकिन मोहवश सांसारिक आदमी के समान जो मुझे क्षोभ हुआ वह अवर्णनीय है। ऐसे महात्मा का चरित्र पृथक् अवश्य उल्लेखनीय है।

१४–श्रीमती माई कर्मदेवीजी–

आपका भेजा हुआ शोकसमाचार विदित हुआ, चित्त में

तो कुछ शोक हुआ परन्तु सोच विचार में पड़ी हूं कि क्या उत्तर दूं। जो भौतिक दिव्य मूर्ति खड्गदेव था वह हमारी भौतिक आंखों से ओझल होगया है, परन्तु जो सत्य आतमा नित्य शुद्ध है वह नित्य शुद्ध परम आतमा में विलीन हो गया है। ज्यों जल में जल आय खटाना। त्यों ज्योती में ज्योत समाना॥ कबीरजी कहते हैं—

संत मरे क्या रोविये, जो आपनडे गृह जायें।
रोवें साकत बापड़े, जो हटो २ बकाये॥

और कुछ समझ में नहीं आता भगवान् की माया विचित्र है, प्रकृति परिणामिनी है जो क्षण २ में रंग बदलती रहती है, परमातमा हमें भी आत्मिक बल प्रदान करें।

१५—श्रीयुत बाबू चांदमलजी चंडक अजमेर—

कृपापत्र आपका मिला और दुःखद समाचार विदित हुआ, छोटी उमर में श्री खड्गदेवजी ने आपके पास रहकर बहुत शीघ्र तरक्की करली थी। इसलिए आखरी समय पर अखंड समाधि लगाकर शरीरान्त किया। आपके पास ज्यादा रहने से उनका वियोग आपको थोड़ासा मालूम होगा।

१६—वृद्धवर श्री पूर्णचन्द्रजी मुरादाबाद—

शोकपत्र के आने से एकदम दिल पर सख्त सदमा हुआ, विकलता बहुत हुई। लेकिन यह खयाल हुआ कि श्री महाराज खड्गदेवजी ने इस प्रकृति रूपी संसार से चित्त हटा कर अपना रिश्ता प्रभु से जोड़ कर, जिसको वे पहले ही चाहते थे, अपना मोक्ष का रास्ता लिया जिसको ऋषि मुनि भी मुद्दत में पाते हैं

सांसारिक साथियों को दुःखित कर गये लेकिन समझने वालों को रास्ता दिखला गये। जो कुछ मर्जी प्रभु की होती है वह ही ठीक है कुछ किसी से नहीं हो सकता, आप जैसे गुरु ने सामने बैठकर प्रभुजी की शरण में भेज दिया। यह कृपा औरों पर भी होनी चाहिये। धन्य धन्य है उनको और आपको।

१७—श्रीमती चौधरन कृष्णाकुमारी देवी स्याऊ—

पत्र प्राप्त हुआ, मैंने आपका पत्र मिस्टर छतरसिंह को सुना दिया था, खड्गदेव की मृत्यु की सुनकर मिस्टर साहब बहुत दुखी हुए, उनको यह हाल अभी मालूम हुआ। मिस्टर साहब और इनकी लड़की का रोना देखकर बहुत दुःख होता है।

१८—पूज्यपाद श्री ११०८ स्वामी श्री त्रिविक्रमदेवतीर्थजी महाराज भूतपूर्व शङ्कराचार्य शारदामठ—

खड्गदेव की मृत्यु महात्माओं जैसी हुई है। उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए। वैसा होने की ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए।

१९—प्रोफ़ेसर लक्ष्मीनारायणजी एम. एस. सी.—

आपकी भेजी हुई श्री खड्गदेवजी की जीवनी मिली विशेष धन्यवाद। इनका रूप रह रहकर मेरे सामने खड़ा हो जाता है, वह रूप, वह कांति, वह तेज, वह मन्द मुस्कान, तीव्र बुद्धि और आपके प्रति विशेष श्रद्धा वा प्रेम, उम्र में मुझ से बहुत छोटे थे पर बहुतेरी बातें मुझे अब भी बहुत दिनों तक उनकी जीवनी से सीखने की हैं। अंग्रेजी की एक कहावत है कि जिन्हें देवता करते हैं वे छोटी उम्र में ही शरीर छोड़ देते हैं यह तो

अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। मृत्यु भी इनकीसी विरले को ही मिलती है।

२०—श्रीमान् डाक्टर मङ्गलदेव शास्त्री एम. ए. रजिष्ट्रार संस्कृत परीक्षा बनारस यूनीवर्सिटी—

ब्रह्मचारी खड्गदेवजी की अचानक मृत्यु के समाचार ने वास्तव में वज्रपात किया। उनकी सौम्य गम्भीर मूर्त्ति बार बार सामने आजाती है। आपकी देख रेख में उनकी शिक्षा हो रही थी यह उनका अहोभाग्य था। आपके समीप ही उन्होंने शान्ति से शरीर को छोड़ा यह तदनुरूप ही हुआ। दुःख उनको स्वाभाविक है जो उनके होनहार जीवन से कुछ आशा करते थे। परमात्मा उनकी आत्मा को और उनके सम्बन्धियों को शान्ति प्रदान करे यही बार २ प्रार्थना है।

२१—पं० ईश्वरदत्त विशारद ड्राइंगमास्टर गुरुकुल कांगड़ी—

कल बुकपोष्ट द्वारा ब्रह्मचारी खड्गदेव शर्मा का जीवन-वृत्त और अतिशोकजनक मृत्यु सम्वाद मिला। मैं शीर्षक पढ़ते ही स्तब्ध रह गया। पुस्तिका हाथ में रही पर खोलने का साहस न कर सका। मुझे यह स्वप्न में भी भान न था कि ब्रह्मचारी खड्गदेवजी की वह सरल सौम्य मूर्ति अब देखने को न मिलेगी, दुष्ट काल की प्रगति बड़ी विचित्र है उससे किसका अनिष्ट नहीं हुआ। इस शोकावसर पर आपसे प्रणीत उसका करुण-पूर्ण शब्दों में छोटासा छलहीन जीवन मेरे हृदय में उच्चासन धारण किए हुए है। महाकवि शंकरजी के साथ "अभागे जीते हैं पुरुष बड़भागी मरगए" पर ही कुछ धैर्य है।

२२–प्रोफ़ेसर कृष्णकुमारजी एम. ए., डी. ए. वी. कालेज कानपुर–

आपका भेजा हुआ श्री खड्गदेव शर्मा का जीवनवृत्त मिला। यह बड़े दुःख की बात है कि उनको अपनी प्रगति करने का तथा दूसरों को उबारने का अवसर नहीं मिला, परन्तु इस संसार में अवसर की कमी वस्तुतः कभी न रही है और न रहेगी। अवसर का सदुपयोग करने वाले विरले हैं। उनमें से ही श्री खड्गदेवजी थे। मुझे तो उनके दर्शनों का सौभाग्य न हुआ।

नोट–स्थानाभाव से जिन अनेक सज्जनों के पत्र देने से रह गये हैं वे क्षमा करें। —सम्पादक

रोज़ाना मिलाप लाहौर

ब्रह्मचारी खड्गदेव की मृत्यु

लाहौर, ६ दिसम्बर १९३४ ई०

निहायत अफ़सोस से यह खबर सुनी जायगी कि ब्रह्मचारी खड्गदेव जो कि किला परीक्षितगढ़ ज़िला मेरठ का रहने वाला और मशहूर उर्दू शाइर पण्डित इन्द्रजीत शर्मा का शागिर्द था और पांच साल से स्वामी सोमतीर्थजी के पास शिक्षा लेकर पंजाब यूनिवार्सिटी का शास्त्री का इम्तिहान देने के लिए माडल टाउन में ठहरने आ या था। रास्ते ही में बीमार होकर मर्ज़ नमूनिया से ५ दिसम्बर बुधवार को प्रातःकाल सात बजे ही आठ घंटे की अखण्ड समाधि लगाकर ओ३म् नामका ~ ~ करता हुआ इस फानी शरीर को छोड़ गया।

हुकुमचन्द

हा खड्गदेव !

(लेखक—श्री चौधरी शिवनाथसिंहजी शांडिल्य रईस माछरा)

यह समाचार समस्त त्यागी ब्राह्मण जाति में बड़े दुःख से सुना गया है कि गत ५ दिसम्बर सन् १९३४ ई० को माडल-टाउन लाहौर में योगीराज श्री स्वामी सोमतीर्थजी के शिष्य हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् ब्रह्मचारी खड्गदेव का देहावसान होगया। इस बात को सभी जानते हैं कि जीवधारियों की मृत्यु अनिवार्य है। हम रात दिन अपने सगे सम्बन्धियों का वियोग सहते हैं और रो धोकर अपना जी हल्का कर लेते हैं इस तरह थोड़े दिन मातम करने के बाद खड्गदेव को भी भूल जायेंगे, परन्तु उसकी मृत्यु से जो बिरादरी को क्षति हुई है वह पूरी न हो सकेगी।

ब्रह्मचारी खड्गदेव का जन्म १३ जनवरी सन् १९१३ ई० को परीक्षतगढ़ में हुआ था, वह अपने वृद्ध पिता चौधरी जसरामजी का इकलौता पुत्र था। खड्गदेव की शिक्षा अपर प्राइमरी स्कूल परीक्षतगढ़ में आरम्भ हुई और हिन्दी भाषा में दर्जे ४ का इम्तिहान पास करके वह टाउन स्कूल माछरा में भरती हुए। गोरा रंग, बड़ी २ आंखें, सुरीली आवाज़, पतला दुबला जिस्म, दिमाग इतना अच्छा कि जो बात एक बार सुनली फिर भूलने का काम नहीं। आखिर बड़े अच्छे नम्बरों से उन्होंने मिडिल पास किया और अपने घर परीक्षतगढ़ चले गये।

थोड़े दिन बाद संस्कृत के धुरंधर विद्वान् योगीराज श्री स्वामी सोमतीर्थजी महाराज माछरा पधारे। पूज्य स्वामी सोमतीर्थजी के प्रयत्न से त्यागी ब्राह्मण जाति में संस्कृत का

कितना प्रचार हुआ है यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए श्रद्धेय स्वामीजी ने किसी सुपात्र विद्यार्थी को अपने पास रख कर संस्कृत पढ़ाने की इच्छा प्रगट की। सब लोगों की दृष्टि खड्गदेव पर पहुँची और उन्हें परीक्षितगढ़ से बुला कर श्री स्वामीजी को सौंप दिया गया।

एक आदर्श विद्यार्थी को आदर्श गुरु भी मिल गये। श्री स्वामीजी के चरणों में बैठकर ब्रह्मचारी खड्गदेव ने थोड़े ही दिन में संस्कृत भाषा में असाधारण योग्यता प्राप्त करली। हिन्दी भी बहुत अच्छी लिखने लगे थे। उनके एक दो लेख त्यागी में छप भी चुके हैं। कुछ लेख मेरे पास हैं, मेरा विश्वास है कि यदि खड्गदेव की उम्र वफ़ा करती तो वह हिन्दी भाषा के नामी लेखक होते। पारसाल उन्होंने संस्कृत में शास्त्री परीक्षा दी थी। इस साल संस्कृत के साथ साथ आयुर्वेद भी पढ़ रहे थे। मानसिक उन्नति के साथ साथ शारीरिक उन्नति भी करली थी। टाउन स्कूल मांछरे का दुबला पतला खड्गदेव ऐसा गबरू जवान बन गया था कि देखने वाले आश्चर्य करते थे।

खड्गदेवजी की विद्वत्ता, सरल स्वभाव देख कर बड़ी २ आशायें बंधी हुई थीं। हम सोचते थे एक दिन यह युवक हमारी जाति में संस्कृत का अद्वितीय विद्वान् होगा और त्यागी जाति का इससे बड़ा उपकार होगा, परन्तु ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था। कली खिलने भी न पाई थी कि चटख गई सारे मनसूबे खाक में मिल गये।

खूब उम्मीदें बंधी लेकिन हुई हिरसां नसीब।
बदलियां उठीं मगर बिजली गिराने के लिए॥

अंग्रेज़ी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि "जिन लोगों से ईश्वर

प्रेम करता है उन्हें शीघ्र ही अपने पास बुला लेता है"। ब्रह्मचारी खड्गदेव के जीवन पर यह कहावत पूर्णरूप से चरितार्थ हुई और भगवान् का प्यारा खड्गदेव उठती जवानी में ही परमपिता के चरणों में चला गया।

श्री स्वामी सोमतीर्थजी अपने कुछ भक्तों के निमन्त्रण पर रावलपिण्डी जाने वाले थे, अभी उस दिन २४ नवम्बर को उन्होंने मुझे गढ़मुक्तेश्वर बुलाया। कहने लगे पांच छः महीने बाद उधर से वापस आऊंगा। तब तक खड्गदेव का विद्याध्ययन भी समाप्त हो जावेगा और तब वह अपनी आजीविका प्राप्त करने के साथ साथ देश और जाति की सेवा में लग जावेगा। जिस समय स्वामीजी यह बात कर रहे थे, मुझे खुशी हो रही थी कि हमारी जाति के लिए एक सुयोग्य सेवक मिलेगा, परन्तु अदृष्ट से एक आवाज़ आरही थी कि—

तेरे मन कछु और है, विधना के कछु और ॥

पूज्य स्वामीजी रावलपिण्डी को रवाना हुए, रास्ते में खड्गदेव बीमार पड़ गया। इस वास्ते सफ़र तोड़ देना पड़ा और लाहौर में उतर गये। बड़े बड़े वैद्यों और डाक्टरों से चिकित्सा कराई गई, परन्तु बूटी बूटी न मिली और खड्गदेव अपने वृद्ध माता-पिता तथा परिचित जनों को रोता बिलखता छोड़ कर परलोक सिधार गया। जो कुछ होना था वह तो हो चुका, रोने धोने से भी होता ही क्या है। अब त्यागी ब्राह्मण जाति के युवकों का यह कर्तव्य है कि खड्गदेव की स्मृति में कोई यादगार कायम करें। वजीफ़े के लिए यदि फण्ड न हो तो कम से कम संस्कृत में विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को खड्गदेव के नाम पर कोई उचित पुरस्कार दिये

जाने का अवश्य प्रबन्ध होना चाहिये। श्री स्वामीजी की इच्छा से खड्गदेव के पास पुस्तकों का बड़ा अच्छा प्रबन्ध हो गया था, स्वामीजी की इच्छा है कि इन पुस्तकों की एक आलमारी खड्गदेव के नाम से किसी अच्छे पुस्तकालय को दे दी जावे। यह तजवीज़ बहुत अच्छी है और स्वामीजी की इच्छानुसार पुस्तकें किसी पुस्तकालय में रख दी जावेंगी, परन्तु युवक समाज को अपने स्वर्गीय भाई के प्रति अपना कर्तव्य नहीं भूलना चाहिये।

(त्यागी वर्ष २७ संख्या १ से उद्धृत)

स्वर्गीय ब्रह्मचारी खड्गदेव शर्मा

की

हिन्दी रचनायें

योगी सार्वभौम सदाशिवेन्द्र सरस्वती

तथा

शंकर सदुपदेश

योगीन्द्र सदाशिवेन्द्र सरस्वती

इस चराचर के गुरु (भगवद्) की इच्छानुसार समग्र संसार के जन्म विकार को नष्ट करने के लिए कभी कभी पतितपावन पवित्र-चरित्र शुद्धाचारी परापर तत्त्वज्ञ, विशुद्धात्मा, सद्गुरु, पुण्यजन्मा, मानवाग्रगण्य और कालत्रयदर्शी भगवद्-वतार मनुष्यरूप से प्रगट हुआ करते हैं जिनके कारण आज भी भारतवर्ष तपोभूमि कहलाता है। अनेक योगी, तपस्वी तथा संयमी पुरुषों ने इस प्रदेश के भिन्न २ भागों में जन्म लेकर उनको पवनीय बना दिया है। इसी प्रकार के पुरुषों में अपना नाम लिखा कर महापुरुषाग्रगण्य राजयोगनिष्णात, प्रसिद्ध योगेश्वर कावेरी नदी के तट का सेवन करने वाले सदाशिवेन्द्र सरस्वती नाम से विख्यात ने लगभग ७५० वर्ष पूर्व जन्म धारण कर चोलमण्डल को अलंकृत किया है। इनकी जन्मभूमि करूर नाम का एक ग्राम था। शृङ्गेरी पीठाधीश्वर श्री शिवाभिनवनृसिंह भारती स्वामी ने इस महायोगी की स्तुति में स्तोत्र लिखे हैं, जिनसे कि संस्कृत स्वाध्यायशील सभी परिचित होंगे।

उस समय कावेरी नदी के तट पर तिरुविशनल्लूर एक छोटा सा ग्राम था जिसमें प्रत्येक विषय के विद्वान् निवास करते थे। यह महापुरुष भी शास्त्रानुसार विद्या-प्राप्ति के लिए वहां गये तो गुरुजन इनकी विद्या-ग्राहिता पर मुग्ध हो गये और सप्रेम तथा ध्यान रीति से पढ़ाने लगे। और भी छात्र-वृन्द इनके सहाध्यायी थे जिसमें से रामचन्द्र दीक्षित अतीव प्रसिद्ध थे। जिन्होंने जानकीपरिणय नामक मनोहर रूपक रचा है तथा दाक्षिणात्य नाटककार कवियों में अति

उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त की है । दूसरे सहपाठी श्री वेङ्कटेश नामक थे जिन्होंने आख्यापष्टि दयाशतक आदि ग्रन्थों को रचकर अध्यात्म-तत्त्व को अनुपम वैखरी वाणी से प्रकट करते हुए अतिपावन आत्मीय चारित्र से अतिगहन धर्म तत्व का उपदेश दिया और महान् प्रसिद्धि प्राप्त की है । इनको बचपन में ही दिव्यानुभव होने लगे थे । आज भी 'ऐयावाल' के आस्तिक पुरुष भक्ति और गौरव के सहित इनकी प्रधान आचार्यों में गणना करते हैं । तीसरे सहाध्यायी इन दोनों के सदृश विद्वान् और पटुप्रज्ञ गोपालकृष्ण शास्त्री थे । जिन्होंने 'भाष्यं वा पठनीयं महाराज्यं वा पालनीयम्' इस उक्ति को हृदय में रखकर निरन्तर महाभाष्य के अध्ययन का रसास्वादन करते हुए इसी भाष्यरत्न पर एक हृदयहारिणी सुन्दर व्याख्या लिखी थी । इस ब्रह्मिष्ठ (ब्रह्मनिष्ठ) के वैदिक अनुष्ठान, ब्रह्मतेज शम और दम से आकर्षित (आकृष्ट) होकर नवसाल जनपदाधीश ने शिष्य कोटि में प्रवेश कर अपने को कृतकृत्य माना था । ये चारों ही छात्र ईश्वर के अंश रूप अध्यात्मतत्व के उपदेश से जगत् के उद्धार के लिए उतरे हुए क्रम से शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगे । इस शिष्यपरम्परा ने सूक्ति सुधारस का आस्वादन किया और दुर्विज्ञेय रहस्य तत्व को अनायास ही समझ कर देहाभिमान को त्याग तीनों एषणाओं (लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा) को भस्मीभूत करके समस्त सांसारिक सम्बन्धों को दूर कर और पुण्य पापों को धोकर केवलानन्द नादमय ब्रह्म में लीन होगई ? इनमें चरित्रनायक सदाशिव बालक ने न्यायशास्त्र में अनुपम पाण्डित्य प्राप्त किया और वाग्युद्ध में अनेकों आचार्यों को पराजित किया । इनका विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था, परन्तु इन्होंने

अपने बचपन को विद्याध्ययन में व्यतीत किया। गुरुकुल में अध्ययन करते हुए इनके पास सूचना गई कि तुम्हारी प्रेयसी ऋतुमती है, तुम शीघ्र आओ जननी की आज्ञा को शिर पर धारण करके ये शीघ्र ही घर गये। वह दिन ऋतु-समय का था। इनके समय में वैदिक कर्मकाण्ड का पूर्ण रूप से प्रचार था। ब्राह्मण संतर्पणादि में लगी हुई माता ने समय पर आये हुए पुत्र का अभिनन्दन किया और गृह के अन्दर लेगई। वहां पर उत्सव का कोलाहल था, गाना बजाना हो रहा था, कोई आशीर्वाद दे रहा था और कोई स्वस्तिवाचन उच्चारण कर रहा था। इस गर्भाधानोत्सव की धूम में इनके भोजन का समय निकल गया। भूख और प्यास से क्लेशित इस संस्कृतात्मा सदाशिव के मन में आया कि ब्रह्मनिष्ठ लोग इसीलिए पाणि-ग्रहण को अनन्त दुःखों का कारण मानते हैं। इसी प्रकार यह आज के अनशन का तुच्छ दुःख भावी अपार दुःखों का सूचक है। इस चिन्ता से उनकी गृहस्थाश्रम में अनास्था हो गई तथा वैराग्य ने इनके चित्त में स्थान बना लिया।

'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' जिस दिन विषयों से विरक्ति हो जाय उसी दिन घर त्याग दे और संन्यासाश्रम में प्रवेश करे इस श्रुति के अनुसार सदाशिव ने गृह का मोह त्याग दिया और उदासीन होकर चल दिये। इसके पश्चात् ये कावेरी नदी के तट पर विहार करते हुये योग विद्या के अनुपम आचार्य की खोज करने लगे। अब इनकी वृत्ति पार्थिव विषय से दूर भागने लगी और संसार-समुद्र में निमग्न जीवों के उद्धार के लिए इनके चित्त में अनुकम्पा उत्पन्न हो गई। यह सज्जन आधि और व्याधि से पीड़ित, जीवन-मरणधर्मा पुरुषों को दुःख-पाश से बंधा देखकर अपना मुख अश्रुधारा से क्षालन

करते थे (धोते थे) और ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन औपाधिक भेदों को हटा कर वर्णव्यवस्था से बाहर अवधूत का व्यवहार करने लगे। इनकी दृष्टि में सब समान थे तथा सब के दिये हुए अन्न से अपने शरीर का पोषण करते थे। ये महात्मा परिग्रह से सदैव बचते थे यहां तक कि पेट भरने के लिए अन्न किसी से नहीं मांगते थे और गली कूंचों में पड़े हुए टुकड़ों और जूंठे पत्तों को चाट कर निर्वाह करते थे तथा सुखपूर्वक इधर उधर भ्रमण करते रहते थे, ऐसी दशा देखकर अनभिज्ञ लोग इनको जड़मूर्ख और पागल कहकर हंसी किया करते थे। इधर उधर फटकारें खाते, भूक और प्यास को सहन करते हुए ये योगीश्वर किसी समय योगिवर्य सर्वविद्या सम्पन्न आचार्य श्री परम शिवेन्द्रजी के पास जा पहुँचे और उनसे अपनी अभिलाषा और योग्यता प्रकट की। आचार्य ने इनको अधिकारी समझ कर योग विद्या के रहस्य को समझाया। योगाभ्यास दशा में ब्रह्मज्ञान रूपी सुधा-रस को बहाने वाले गाने इनके मुखकमल से निकलने लगे थे, इस संयमी ने खूंटे से घोड़े की तरह यम नियम ध्यान और अभ्यास-रूपी रज्जु से अन्तःकरण को बांध दिया और योगियों से उप-दिष्ट मार्ग पर चलना आरम्भ किया। इस प्रकार इस महात्मा ने अन्य पुरुषों को दुर्विज्ञेय और अप्राप्य कौशल प्राप्त कर योग दिवाकर की किरणों से हत्-कमल को विकसित किया और सिद्धावस्था का अनुभव करते हुए परमोज्ज्वल ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार किया। मन और वाणी के अविषय परम ज्योति में रमण करते हुए इन योगी ने व्यतीत होते हुए बहुत दिनों को क्षण के समान समझा। इस तरह से गुरु के उपदेश के वैभव और आत्मीय पूर्व संस्कारों से अपूर्व योगविद्या का

अनुभव कर सार्वभौम योगी होगये । ईश्वरीय ज्ञान के प्रत्यक्ष से शान्तात्मा परनिन्दास्तुति से पराङ्मुख इस योगीन्द्र ने रजोऽतीत शमप्रधान आत्मवृत्तियों को आर्या छन्दों से भूषित आत्मविलास काव्य में प्रकट किया है। गुरु के समीप निवास-काल में अपने पास दर्शनार्थ आये हुए सैकड़ों पंडितों को इन्होंने शतसहस्र प्रश्नों से विमोहित कर लज्जित किया था। इनके प्रश्नों का उत्तर वे विद्वान् पंडित चुप होजाना ही देते थे। इस प्रकार इनके प्रश्नों से खिन्न होकर उन पंडितों ने सदाशिवेन्द्रजी के गुरु से अपना अपाण्डित्य और उनका वाग्वैभव निवेदन किया। आचार्य ने इस वशी को अपने समीप बुला कर कहा कि हे सदाशिव ! तू कब दुर्निरोध वाणी के संयम को जानेगा। उनके कहने पर अपने अपराध को सोचा और स्वीकार किया। इसके अनन्तर इन्होंने आजीवन मौनव्रत धारण करने का संकल्प किया तथा आचार्य को प्रणाम कर अपने अपराध की क्षमा मांगी। इस आचार्य से आज्ञप्त मौनव्रती ने पांच इन्द्रियों, मन; काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और अहङ्कार इन छः शत्रुओं पर अधिकार कर लिया और करतलभिक्षा तरुतल-वास निश्चय कर सुखपूर्वक शान्त मन से ब्रह्म का ध्यान करते हुए समय विताने लगे। किसी समय ये पुण्यात्मा खेत के वीच क्यारियों में बने हुए स्थण्डिल पर सोरहे थे तो उस समय कुछ किसानों ने इनको इस प्रकार देखकर परस्पर कहा कि देखो यह वैसे तो वीतराग है परन्तु उपधान (तकिये) के विना निद्रा नहीं आती है जब वे किसान उसी रास्ते से वापस लौटे और इस दयालु को विना तकिये के सहारे सोता देखा तो कहा कि सर्व आसङ्ग से रहित होते हुए भी इसकी निन्दा और स्तुति में उपरति नहीं है। इस

प्रकार के उपालम्भों से इस संयमी के हृदय पर ज़रा भी प्रभाव नहीं हुआ। यह तो ईश्वर की ही महिमा थी कि पहले तो मेंढका तकिया बन गया और फिर तकिया न रहा। ठीक है ईश्वर अपने आश्रितों की प्रत्येक रीति से घड़े की तरह ठोक बजा कर परीक्षा किया करते हैं और वे ही इस संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये सहनशक्ति, तप और संयम प्रदान करते हैं।

अस्तु। वे कृषक इस भगवान् की लीला से विस्मित और लज्जित हुए और अपने अपराध के क्षमापनार्थ उस योगी के पादों पर गिर पड़े तथा यथोचित उनका सत्कार करके आत्माभिमतस्थान को चले गये। यह वृत्तान्त श्री वेङ्कटेश्वरजी ने सुना था। उन्होंने इसे भलीभाँति विचार कर यह समझा कि सार्वभौम योगी का प्रकृति के साथ सम्बन्ध दुर्निवार है।

"तृणतुलिताखिलजगतां करतलकलिताखिलरहस्यानाम्।
श्लाघावारवधूटी घटदासत्वं सुदुर्निरसम्"

"जिन पुरुषों को समग्र संसार तृणवत् भासता है तथा सर्व रहस्य करतलामलकवत् प्राप्त हैं। उन पुरुषों को भी श्लाघारूपी अथवा निन्दारूपी वारवधूटी (वैश्या) की चेष्टाओं का प्रभाव रोकना अति कठिन हो जाता है" यह विचार उस योगी ने अपने मन में किया तथा बुद्धि के परिपाक की विरोधिनी श्लाघा निन्दारूपी वारवधू की चेष्टा रूपी न्यूनता को दूर किया और योग की समुन्नत कोटि को सुशोभित किया। इसी अवस्था में यह सज्जन परम योगयुक्त पुलिन(रेत)युक्त दिव्य अमरावती और कावेरी नदियों के किनारों के प्रदेशों में प्रायशः निवास और भ्रमण करते थे और परम आनन्द का अनुभव

करते हुए अपने सुखपूर्वक दिन व्यतीत करते थे, जिस समय यह पुण्यात्मा अन्धे गूंगे और मूक की भांति उन्मनी अवस्था में इधर उधर घूमते और भ्रमण करते थे तो उस समय अनभिज्ञ लोग परमात्मा में व्यासक्त मन वाले इस योगिवर्य को सहसा उन्मत्त (पागल) कह बैठते थे, परन्तु विद्वान् लोग इस प्रकार की अवस्था को सुनकर ऐसे पुरुषों को अपनी उपयोगिता के साधन समझते हैं तथा जब उस अवस्था को प्राप्त करने में असमर्थ हो जाते हैं तो फिर पश्चात्ताप करते हैं जैसे कि इन एकचित्त योगी के गुरु श्री परम शिवेन्द्रजी ने पश्चात्ताप किया है। यथा—

उन्मत्तवत्सं चरतीह शिष्य—
स्तवेति लोकस्य वचांसि शृण्वन्
खिद्यन्नु वाचास्य गुरुः पुराहो
ह्युन्मत्तता नहि मे तादृशीति ॥

(अर्थ) आपका शिष्य उन्मत्त की तरह भ्रमण करता है ऐसा लोगों से सुनते हुए इनके गुरु ने खेद के साथ पूर्वकाल में यह कहा कि आश्चर्य है मुझे उस प्रकार की उन्मत्ता नहीं प्राप्त हुई। सदाशिव तो निरन्तर देहाभिमान से मुक्त थे। वर्षा, सर्दी और गर्मी तीनों से कुछ भी क्लेशित नहीं होते थे। आत्मा में ही निरन्तर रमण करते थे। कभी तो वनों में प्रवेश करते थे और कभी नदी के किनारे रमण करते थे और कभी तो बहुत दिनों तक किसी को भी दर्शन नहीं होते थे। तथा कभी कावेरी नदी के सिकता (वालू) में समाधिस्थ हुए शरीर से स्थावर और स्थाणु की तरह प्रतीत होते थे।

एक वार ये योगिवर्य चिरकाल के लिए कावेरी नदी के तट पर समाधिस्थ होगये। इसी बीच में नदी में अति भयङ्कर वृक्ष, पौधे और नदी के समीप रहने वाले पशु, पक्षी मानव कीड़े मकोड़ों के लिए यमरूप वाढ़ आगई जिसमें अनेक जीवों के साथ इस वशी को भी वहना पड़ गया। कुछ भी न करके समाधिस्थ ही अनायास जहां के तहां पहुंच गये। उस वाढ़ में अनेक जहाज डूब गये। चारों ओर स्थल जलमय ही दीखता था, परन्तु भगवत्-कृपा तथा भाग्य की चेष्टा से यह महात्मा कहीं पर झाड़ झुंड के सहारे अथवा किसी भी प्रकार पृथ्वी पर जा पहुंचे, वहां पर इनके ऊपर नदी के वेग से लाया हुआ वालू आच्छादित होगया। किनारे पर स्थित लोग रक्षा के लिए असमर्थ होने के कारण कहने लगे कि क्या करें यह योगी अति व्यापत्ति से व्याप्त है, इस प्रकार के प्रायः दुर्दान्त मानव मृत्यु के ही योग्य होते हैं। अन्त में वे लोग निराश होकर अपने गृहों को चले गये। तीन मास के पश्चात् जल कम होने के कारण नदी की कई शाखा होगईं और सर्वत्र प्रायः रेत ही रेत दृष्टिगोचर होने लगा। ग्राम के लोग स्नान और पीने की सुगमता के लोभ से नदी के बीच में डहका वनाने के लिए रेत खोदने लगे। खोदते समय खोदने वाले के खनित्र (कसला) में कोई कठिन चीज़ लगी, इसलिए खोदने वाले ने खनित्र (कसला) को तत्काल ही वाहर निकाल लिया और उसको रक्त से लाल देखकर कर्म करने वाला पुरुष विह्वल तथा भयभीत होगया। इस आश्चर्य को देखकर सभी ग्रामीणों ने चारों ओर से धीरे २ खोदना आरम्भ किया तो चारों ओर वालू में गड़े हुए समाधिस्थ इस योगिवर्य को सुखपूर्वक सोते हुए मनुष्य की तरह देखा और वालू हटाकर वाहर निकाल लिया तथा परस्पर

कहने लगे कि इस संयमीन्द्र का प्रभाव अचिन्त्य है।

बाहर निकलने पर वे समाधि से उठे और सुप्तोत्थित की तरह आंखों को खोलते मींचते हुए उस प्रदेश से अन्यत्र चले गये।

एक समय करूर देश में खेतों में धानों के ढेर पड़े हुए थे जिन में से एक ढेर में धानों का अति महान् ढेर पड़ा हुआ था उस की रक्षा के लिए धानों के स्वामी ने कुछ नौकर नियत कर दिये थे और स्वामी अपने घर चला गया था। नौकरों ने समस्त रात्रि जागते हुए व्यतीत की। इसी बीच में सर्वमान्य यह महापुरुष यादृच्छिक गति से भ्रमण करते हुए उधर आ निकले और धानों की राशि से ठोकर खाकर उस पर ही गिर पड़े। धानों के रक्षकों ने इनको चोर समझा और मारने के लिए दण्डों का प्रहार आरम्भ किया, परन्तु भगवत्-कृपा तथा इनके तेजपुंज के प्रताप से वे प्रहार न कर सके और उनके हाथ ऊपर को उठे हुए चिपके की तरह रह गये तथा चित्रार्पित की भांति प्रतीत होने लगे। जब प्रभात होने पर उनका स्वामी आया और नौकरों की निःस्तब्धाङ्गता देखी तो उसने पूछा कि क्या बात है जिससे तुम लोग जंजीर से दृढ़ बंधे हुए हाथी की दशा का अनुभव कर रहे हो। नौकरों ने उत्तर दिया कि हे स्वामिन् ! हमने सम्पूर्ण रात्रि जागते हुए ही व्यतीत की है, परन्तु यह महात्मा न मालूम यहां कहां से आ-गया और धानों की ढेरी पर गिर पड़ा, हमने इसको चोर समझा और मारना चाहा परन्तु मारने से पहले प्रहार करने की चेष्टा पर ही हमारे हाथ पैर चिपक जैसे गये, न नीचे को होते हैं, न ऊपर को, न आगे को चलते हैं और न पीछे को हटते हैं, क्या करें। इस प्रकार के वार्तालाप से विक्षेप होने के कारण इस जितात्मा की समाधि खुल गई और अपनी स्वेच्छ

गति से अपने अभिमत स्थान को चले गये। इसके अनन्तर उन नौकरों की वह दशा परिणत होगई और अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होगये।

किसी समय यह महात्मा उन्मनी अवस्था में वनों में भ्रमण कर रहे थे। वहां पर किसी राजकर्मचारी ने इनको देख लिया और लकड़ियों का गट्ठा इनके शिरपर रख दिया और अपने साथ २ ग्राम को ले चला। ग्राम में उस कर्मचारी के घर जाकर इस महात्मा ने उस गट्ठे को लकड़ियों के समूह में ही डाल दिया और चले गये। इसके कतिपय क्षणों के पश्चात् ही उस राजकर्मचारी के घर में उसी लकड़ियों के समूह में अग्नि प्रज्वलित होगई और क्षण भर में सर्व भस्म करदिया, शान्त करने के उपाय करने पर भी कुछ नहीं चला। अन्त में इस अद्भुत दृश्य को देखकर वे लोग शोक तथा पश्चात्ताप करने लगे कि अहो हमने उस महात्मा का बलात्कार से तिरस्कार किया है उसका यह फल प्रतीत होता है। एवं वदन्ति तत्कालीनाः (ऐसा उस समय के मनुष्य कहते हैं) पामर मनुष्य इस सिद्धेश्वर को यथार्थ रूप से जान नहीं सकते थे इसलिए 'यह पागल है' ऐसा कह बैठते थे। परन्तु बालक गलियों में घूमते हुए इस संयमी को हठपूर्वक रोक लेते थे और उनमें से कुछ इनके केशों को, कुछ हाथ की अंगुलियों को और कोई पैर अंगुष्ठ आदि को खींचकर आत्मविनोद किया करते थे। वह योगीन्द्र भी उन बालकों से अत्यन्त प्रेम करते थे और अन्य पुरुष से प्राप्त किये भक्ष्य पदार्थ उनको देकर आत्मविनोद किया करते थे और अपनी निर्व्याज करुणामयी भक्ति का संचार करते थे।

एक दिन ग्राम के सब बच्चों ने मिलकर रोक लिया

और कहा कि—महाराज! आज मधुरापुर में वृषभवाहन उत्सव है ऐसा हमने सुना है इसलिए उसको दिखाने के लिए आप हमें वहां ले चलिये। उस जगह से मधुरापुर अति दूरी पर था शीघ्र वहां पहुंचना अशक्य था, परन्तु बालकों के निष्कपट प्रेम-पाश में संयमीन्द्र बंध गये और कहा कि तुम सब आंखें बन्द करलो। महात्मा के आदेशानुसार उन बच्चों ने वैसा ही किया। क्षणभर के पश्चात् वे सब शिशु उस उत्सव में जा पहुंचे और भक्तियुक्त जनसमुदाय से घिरे हुए और नृत्य करते हुए सुन्देश्वर भगवान् के दर्शन किये। योगीन्द्र के सहित उन शिशुओं ने अपने आपको मधुरानगर के चबूतरे पर समझा। सहसा ही ऐसी अवस्था से वे बच्चे विस्मित हुए और परस्पर शनैः २ विचार करने लगे कि क्या यह स्वप्न है या माया का नाटक है अथवा चित्त विभ्रम है। संयमीन्द्र ने भी उनको अभिमत उत्सव का प्रसादभूत मोदक आदि देकर अभिनन्दित किया। किमिदं भाव रूप (यह क्या है) आश्चर्य से युक्त और महोत्सव के आनन्द से आनन्दित बालकों ने रात्रि को जाते हुए न समझा। उत्सव के समाप्त होने पर संयमीन्द्र ने पूर्व की तरह उनको अपने ग्राम में पहुंचा दिया और उन बालकों ने भुक्तशेष भक्ष्य मोदक आदि उत्सव के प्रसादभूत अपनी २ माताओं को अर्पण किये और स्वानुभूत दृश्य कह सुनाया।

मधुरा और बाराणसी के रहने वाले कहते हैं कि शिवरात्र्यादि महोत्सव के दिनों में एक रात्रि में दोनों स्थानों में उस संयमीन्द्र के दर्शन किये थे।

अश्रुताक्षर नाम (बे पढ़ा लिखा) कोई ब्रह्मचारी सदैव पृष्ठगामी होकर इस संयमीन्द्र की भक्ति भावित अन्तःकरण

से सेवा करने लगा। उसकी सेवा से प्रसन्न हुए इस योगिवर्य ने उसको करुणामयी दृष्टि से कई वार देखा और अनुग्रह किया।

एक समय ब्रह्मचारी ने संयमियों के योगदृष्टि के अञ्जनभूत रंगनाथ को देखने के लिए अपनी अभिलाषा को सविनय यमीन्द्र के कर्णों तक पहुंचाया। सेवक की अभिलाषा को सुनकर उसे आंख बंद करने का संकेत किया। अपने सेव्य के आदेश के अनुसार ब्रह्मचारी ने वैसा ही किया और थोड़ी देर पश्चात् आंख खोली तो कपूर के दीपक से आर्ति किये जाते हुए श्री रंगनाथ के सामने अपने आपको और एक कोने में योगिवर्य सदाशिवजी को देखा। इसके कतिपय क्षणों के अनन्तर संयमीन्द्र अन्तर्हित हो गये। उनके अदर्शन से उस ब्रह्मचारी को अतिखेद हुआ और पैदल ही महान् मार्ग चल कर चिरकाल में कारूर देश में आया और वहां पर समाधिस्थ संयमीन्द्र को देखा तथा भक्ति परवश होकर उनके पैरों में गिर कर सर्व वृत्तान्त निवेदन किया। दयार्द्रचित्त उस संयमीन्द्र ने भी वालू में अक्षर लिख कर उस ब्रह्मचारी को उपदेश किया और शीघ्र ही साङ्गोपाङ्ग वेद और सर्व विद्या उसके हृदय में प्रादुर्भूत हो गई। यह पंडितोत्तंस है इस प्रकार राजाओं ने उसका मान किया। बड़े होकर उस ब्रह्मचारी ने अतुल संपत्ति उपार्जन की। इस प्रकार वृद्ध मानव कहते हैं। अहंभाव त्याग कर, निरन्तर आनन्दमय ब्रह्म में रमण करते हुए निर्भय, अप्रतिहत, यदृच्छा से भ्रमण करने वाले यह परम पुरुष नारी-मणियों से व्याप्त किसी यवन-सम्राट् के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए। सूर्य के प्रकाश व धूप से रक्षित स्त्रियों के समीप अवधूत वेष से घूमते देख कर यवन-सम्राट्

को अतिक्रोध आया और खड्ग से इनकी एक भुजा काट डाली, भुजा कटने के दुःख से रहित महात्मा उस प्रदेश से अन्यत्र चले गये और आह भी न की। जब यवनाधिप ने इस संयमीन्द्र की ऐसी सहनशीलता और उपेक्षा वृत्ति देखी तो वह अतिशोक और पश्चात्ताप से पीड़ित हुआ और उनके अन्वेषणार्थ घोड़े दौड़ा दिये परन्तु सब अकिञ्चित्कर रहा। अपने धन, मद और ऐश्वर्य की निन्दा करता रहा तथा उनके खोजने के लिये स्वयं भी प्रयत्न तत्पर हुआ। अन्त में कतिपय वर्ष व्यतीत होने पर उनके दर्शन हुए और सात वर्ष तक राज्यसामग्री त्यागकर छाया की भाँति उनके पीछे २ फिरता रहा। इस प्रकार शीत, आतप और वर्षादि सहन करते पृष्ठानुगामी उस यवन को देखकर दयार्द्र योगी ने पूछा कि तू इस प्रकार मेरे पीछे क्यों फिरता है। यह यवन अपने किये अपराध की क्षमायाचनापूर्वक उनके चरणों में गिर गया। अपराध को निवेदन करने के पश्चात् उस महापुरुष ने दूसरे हाथ को उस कटे हुए अंस प्रदेश पर फेरा और कहा कि मेरी भुजा तो नहीं कटी है यह तो सम्पूर्ण है। उनकी इस सिद्धि से यवन अति लज्जित और विस्मित हुआ और उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया तथा अनुकंपा की याचना की। योगीन्द्र ने तथास्तु कह कर अनुग्रह किया और अपने अभिमत प्रदेश को चले गये। इसी ही अत्यन्त अद्भुत अपदान (प्रशस्त कर्म) को अनेकों महानुभावों ने अपनी वाणी से रञ्जित किया है।

योऽनुत्पन्नविकारो बाहौ म्लेच्छेन छिन्ननिपतितेऽपि
अविदितममतायास्मै प्रणतिं कुर्मः सदाशिवेन्द्राय ॥

योग-रहस्य से अनभिज्ञ आज कल के वैज्ञानिक ऐसी

अद्भुत घटनाओं को यथार्थरूप से न जान कर असत्य कहने का दुःसाहस कर बैठते हैं। वे लोग तो प्रकृति को ब्रह्म मान कर अपने को निर्लेप कह देते हैं। तथा मोटर, रेल और हवाई जहाज़ों आदि को ही परदेश-गमन साधन जानकर अन्यथा उस देश में गमन को असम्भव और अशक्य पदसे भावित करते हैं, परन्तु यह स्थूलशरीर से गमन इन साधनों से भी बन जाता है और अन्य रूप से भी। जैसे कि योगी पुरुष अपने संयम से दिव्य शरीर प्राप्त कर आकाश गमन द्वारा अन्य देशों को प्राप्त करते हैं और इच्छानुकूल भोग कर सकते हैं। ऐसे सिद्ध पुरुष अन्तर्मुखी वृत्ति वाले होते हैं। हम बहिरंगवृत्ति मनुष्य उनको याथात्म्य रूप से जानने में असमर्थ हैं। विरक्त पुरुष हृदय देश में भासमान परम ज्योति का साक्षात्कार करते हुए सर्वदा आत्मरमण करते हैं। परन्तु इन्द्रियों और उनके विषयों में व्यस्त हुए बाज़ारों में प्रकाशित बिजली के प्रकाश को चर्मचक्षु से देख कर अति प्रसन्न होते हैं और अपने को कृत-कृत्य मानते हैं, परन्तु ये सब विषयबन्धनरज्जु हैं। इनमें पड़ कर मनुष्य अपने को भूल जाता है इसीलिये अनेक यातनायें पाता है और आवागमन के पाश में फंसा रहता है। आत्मरमणकर्ता तो सूक्ष्म और सामयिक तथा परिमित आहार से नियम तत्पर रहते हैं। तथा यम, नियम, ध्यान और धारणादि से मन को वश में करते हैं, किन्तु जब हम अपने ऊपर दृष्टि डालते हैं तो एक दम दोष ही दोष दृष्टिपथ पर आते हैं और कभी नैमित्तिक नियम को समय पर समाप्त नहा कर सकते हैं और न उस ओर ध्यान ही देते हैं। मन के वशीकार की बात तो दूर ही रही। इस भद्दपन का कहां तक कार्य किया जाय। सर्व मनुष्य अपनी प्राचीन और आधुनिक दशा से परिचित हैं

फिर भी अपने पर कोई भी दृष्टि नहीं डालता और न कल्याण का उपाय ही सोचता है। फिर इस प्रकार प्रमादी आलसी मद्यपी आदि गुणों से अलंकृत पुरुष महापुरुषों की किस प्रकार दशा को जान सकता है और उनके प्रति असत्यता का भाव हृदय में ला सकता है? सिद्धात्मा तो इस संसार को तृणवत् माया का प्रपंच समझते हैं, सदैव ही इसकी नश्वरता पर विचार करते हैं। अपने सन्मार्ग का ध्यान रखते हैं और उत्पथगामी को सुपथ में लाते हैं। ऐसे ही सिद्ध पुरुषों में इस योगिवर्य की गणना थी इसमें किसी को यत्किंचित् भी संशय नहीं जैसा कि अभियुक्तों ने वर्णन किया है।

निजगुरु परम शिवेन्द्र श्लाघित विज्ञानकाष्ठाय।
निजतत्वनिश्चलहृदे प्रणतिं कुर्मः सदा शिवेन्द्राय ॥

अब से (१७५) पौने दो सौ वर्ष पूर्व की बात है कि यह पुण्यात्मा नवसाल प्रदेश के समीप भ्रमण कर रहे थे और गुप्त रूप से निवास करते थे उस समय विजय रघुनाथ तोण्डमान नामक राजा ने भलीभांति दर्शन किये थे ऐसा सुनने में आया है। दर्शनमात्र से ही उस राजा को अति शान्ति मिली और राज्यभार त्यागकर आठ वर्ष तक इन की ही सेवा में तत्पर रहा। अन्त में राजा के इस विशुद्ध चरित ने योगिवर्य के अन्तःकरण पर अधिकारी की योग्यता को अंकित किया और बालू में कुछ नियम लिख कर उपदेश दिया तथा सब वृत्त जानने के लिये गोपाल शास्त्री को निर्देश किया। श्री गोपालकृष्णजी कावेरी के समीप के भिक्षाण्डार क्षेत्र में रहते थे। नवसाल के राजा ने उन्हें सपरिवार अपने राज्य में बुला लिया

और एक ग्राम देकर अपना कुलगुरु बना लिया उनके वंशज आज तक भी राजगुरु पद से सत्कृत किये जाते हैं।

इस राज्य में प्रति वर्ष महान् ऐश्वर्य और धूम धाम से शारद नवरात्र महोत्सव श्री सदाशिवेन्द्रजी की निर्दिष्ट रीति से होता है जिसमें विद्वानों की यथोचित सेवा और दक्षिणामूर्त्ति की पूजा होती है। जिस वालू में राजा को योगिवरिष्ठने लिख कर उपदेश किया था वह वालू दक्षिणामूर्त्ति की पूजा के प्रधान द्रव्योंमें गिना जाता है। इस सिद्धात्मा के अनुग्रह से अनुगृहीत होकर अति प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और विद्वान् लोग इसका यश वर्णित करने लगे। राजा भी "वानवास्या" इस प्रसिद्धि को प्राप्त होगया। इस वृत्त को पाण्डीय और चोलदेशीय सर्व निवासी जानते हैं। श्री सदाशिवेन्द्रजी ने योरुप और तुर्किस्तान आदि देशों में भ्रमण किया था ऐसा उनकी महिमा गाने वाले विश्वास करते हैं।

इस प्रकार इस मौनव्रती ने बहुत से वर्ष इस लोक में रमण किया। अन्त में शरीर त्यागने की इच्छा से नेरूर देशवासियों को बुलाकर कहा कि—द्विजोत्तमो ! अब मैं इस नश्वर संसार से अपना सम्बन्ध तोड़ना चाहता हूं इसलिए मिथुन सक्रान्ति-युक्त ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की दशमी को मैं योगसमाधि से ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त हो जाऊंगा । उसी दिन बनारस से एक पुरुष एक बाणलिंग लेकर यहां आवेगा। आप लोग उस लिंग को उस पुरुष से लेकर मेरी समाधि के समीप के स्थान में स्थापित कर देना। इस प्रकार की अभिलाषा उन्होंने ग्राम निवासियों से प्रकट की, ग्रामीण उस समय की प्रतीक्षा करने लगे और दशमी के दिन उनके पास गये। वहां पर ग्रामीणों ने संयमीन्द्र को खड्डा खोदते देखा। खड्डे के तय्यार हो जाने पर

योगिवर्यजी उसमें आसन लगाकर बैठ गये। ग्रामीण पुरुष उनसे कुछ पूछने को ही थे कि इधर काशी से आने वाले विप्र को देखा तो लोगों के प्रकट करने से पूर्व ही संयमीन्द्र ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त होगये और वे पुरुष अति आश्चर्य से युक्त हुए तथा उनका आदेश पालन किया।

नेरूर प्रदेश के अन्तर्गत ही इनका समाधिस्थल है, वहीं पर ही नवसाल प्रदेश के राजा ने महान् वैभव और द्रव्यव्यय से नित्यनैमित्तिक पूजा के हेतु पक्षोत्सव, मासोत्सव और वार्षिकोत्सव करने आरम्भ कर दिये जिनकी प्रथा अब भी जैसी की तैसी है। लोग महान् आस्था और श्रद्धा से संयमीश्वर की समाधि की पूजा करते हैं तथा अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

अनन्त शक्तिपूर्ण कर्तव्यपरायण सुख दुःख को समान समझने वाले, अतिविरक्त, त्यागी, क्षमाशील और संयमादि गुणों से अलंकृत पुरुषों ने इस दक्षिण प्रदेश को जन्म धारण करके पवित्र किया है यह उसका अहोभाग्य है। केवल दक्षिण ही प्रदेश धन्यवादार्ह नहीं है किन्तु सर्व भारत भूमि ही धन्यता की पात्र है। न जाने इस प्रकार के कितने सिद्धपुरुषों, ऋषियों और मुनियों ने इसको पवित्र और उज्वलित किया है और करेंगे। दक्षिण निवासी इनके अपदानों (प्रशस्तकर्मों) को आज भी अभिनिवेश के साथ गाते और इनकी महिमा को पवित्र करने वाली समझते हैं। शृङ्गेरी मठ के सार्वभौम यति भी इनके अनुभव वर्णन और प्रतिकृति के दर्शन से अपनी आत्मा को पवित्र करते हैं। अस्तु, इस प्रकार के पुरुषों की महिमा वर्णन के लिए यदि समुद्र को मसिभाजन (दवात), कल्पवृक्ष की शाखाओं को लेखनी (कलम), पृथ्वी को कर्गल (कागज़

और सरस्वतीजी को लेखक बनाया जावे तो भी उनकी महिमा का पार पाना दुःशक्य है। इस महात्मा ने वेदान्तदर्शन पर ब्रह्मसूत्रवृत्ति नाम का एक ग्रन्थ लिखा है जो प्रस्थानत्रय पढ़ने की इच्छा करने वालों का विशेषरूप से उपकार कर रहा है। यद्यपि ब्रह्मसूत्र पर अनेकों वृत्तियां लिखी गई हैं परन्तु भाषा लालित्य और आशय प्रकाशन की सुलभ रीति से युक्त इस ग्रन्थ का सादृश्य नहीं प्राप्त कर सकती है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त बारह उपनिषदों की दीपिका नाम की टीका भी लिखी है जो कि श्री वाणीविलासमुद्रा यंत्रालय श्रीरङ्गम में प्रकाशित होने वाली है। योग जिज्ञासुओं के उपकार के लिये योगसूत्रों पर योगसूत्रवृत्ति लिखी है। जो अति मनोहर और सरल है जिससे गहन और अगम्यार्थ सुगमता से बुद्धि में प्रवेश कर जाता है। इसका प्रसिद्ध नाम योगसुधाकर है जो अपने नाम के सदृश ही शास्त्र का रहस्य भलीभाँति प्रतिपादन करता है। इस पुरुष की सभी वृत्तियां पार्थिव भोगों में अरुचि, ब्रह्मके साक्षात्कार में प्रीति और परानन्द को उत्पन्न करने वाली हैं। ऐसा लोगों का निश्चय है और इन्होंने स्वयं भी लिखा है कि—

संत्यज्य शास्त्रजालं सं व्यवहारं च सर्वतस्त्यक्त्वा।
आश्रित्य पूर्णपदवीमास्ते निष्कम्पदीपवद् योगी॥
वैराग्यविपुलमार्गं विज्ञानोद्दामदीपिकोद्दीप्तम्।
आरुह्य तत्त्वहर्म्यं मुक्त्या सह मोदते यतिराट्॥

सर्व शास्त्रजाल को छोड़कर और सारे व्यवहारों को बन्द कर परमानन्द पद का सहारा लेकर योगी निर्वातस्थान में स्थित निष्कम्प दीपक की भाँति प्रदीप्त रहता है।

तथा विज्ञानदीप के प्रचण्ड प्रकाश से दीप्त वैराग्य मार्ग से तत्व-प्रासाद (तत्वरूपी महल) में यति मुक्ति के साथ रमण करता है।

अस्तु, मैं इस लेख को समाप्त करता हूं, क्योंकि सिद्ध-पुरुष के गुण वर्णन करना तो अति कठिन है, परन्तु अपनी बुद्धि अनुसार सभी लोग यत्न किया करते हैं। यदि इस में किसी प्रकार की त्रुटि हो तो क्षम्य है क्योंकि मनुष्य त्रुटियों का भाजन है इस में एकसे एक त्रुटियां ही त्रुटियां भरी हुई हैं। मैं तो एक साधारण जीव हूं और अल्पज्ञ हूं, परन्तु हमारे प्राचीन आचार्य भी इस दोष से सर्वथा शून्य नहीं रहे हैं। किसी न किसी प्रकार का स्खलन होना अस्वाभाविक नहीं है। मेरी तो यही प्रार्थना कि ऐसे घोर कलियुग में यदि मनुष्य इस प्रकार के लेखों को भक्तिपूर्वक पढ़ें और विचार करें तो उन के कल्याण होने में कोई सन्देह प्रतीत नहीं होता। जो अपने कुल और जगत् को उन्नत करना चाहते हैं उनको ऐसे लेखों पर विशेष ध्यान देना चाहिये और इसके रहस्य को समझना चाहिये।

खड्गदेव शर्मा

शङ्कर सदुपदेश।

(१) इस अपार संसार-समुद्र में डूबते हुए प्राणियों के लिए भगवान् के पदाम्बुज (चरण कमल) ही सुदृढ नौका है।

(२) जिसका विषयों में राग है वह बँधा है।

(३) जो विषयों से विरक्ति है (इन्द्रियों पर अधिकार रखना है) वह मुक्ति है।

(४) अपना शरीर ही घोर नरक है (क्योंकि मलमूत्रादि के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं रखता)।

(५) तृष्णा का क्षय (न रहना) ही स्वर्ग पद है। (कर्मफल के अनुसार प्रभु से प्राप्त किये हुए में ही सन्तोषपूर्वक जीवन व्यतीत करे और प्रभुस्मरण में तत्पर रहे)।

(६) वेद द्वारा प्राप्त हुआ आत्मज्ञान ही संसार-बन्धन को छुड़ाने वाला है अर्थात् मोक्ष का हेतु है।

(७) नारी (स्त्री का सम्बन्ध) ही नरक का द्वार है।

(८) प्राणियों को न सताना (कायिक, वाचिक और मानसिक पीड़ा न देना) ही स्वर्ग का साधन है।

(९) समाधि-निष्ठ ही सुख से सोता है।

(१०) जिसको सत् और असत् का ज्ञान है (उसके अनुकूल आचरण करता है) वह जागता है अर्थात् ज्ञानी कहा जा सकता है।

(११) अनधिकृत (विषयलोलुप) इन्द्रियां ही अपने शत्रु हैं। यदि ये ही वश में हो जायँ तो मित्र बन जाती हैं।

(१२) अत्यन्त दरिद्र वही है जो प्रतिदिन अनेकों तृष्णाओं में पड़ा रहता है।

१३) सन्तोषी पुरुष ही धनी है।

(१४) पुरुषार्थहीन पुरुष जीता हुआ भी मरे हुए के समान है।
(१५) कोई आशा न रखना ही सुख देने वाला अमृत है।
(१६) मैं और मेरा यह अभिमान ही गले की फांसी है, बन्धन है।
(१७) मद्य के समान स्त्री पुरुष को बेहोश करदेती है।
(१८) कामातुर पुरुष महान् अन्धा होता है।
(१९) संसार में अपकीर्ति होना ही मृत्यु है।
(२०) जो सदैव हित का उपदेश करता है वही गुरु है।
(२१) जो गुरु का भक्त है वही शिष्य है।
(२२) संसार में जन्म और मरण का सिलसिला ही दीर्घ (लम्बा) रोग है।
(२३) इसका विचार (प्रभु की शरण ही) इसकी औषधि है।
(२४) मनुष्य का शील ही सब से उत्तम भूषण है।
(२५) मन की विशुद्धता ही परम तीर्थ है।
(२६) स्वर्ण (सम्पत्ति का सुख), कान्ता (स्त्रीसम्बन्धी सुख) त्यागने योग्य हैं।
(२७) गुरु और वेद के वचन ही यहां श्रवण के योग्य हैं।
(२८) सत्संग, ज्ञान, विचार और सन्तोष ब्रह्मगति के साधन हैं।
(२९) विषय आसक्ति से शून्य, मोहरहित और परमात्म-चिन्तन में आसक्त पुरुष सन्त हैं।
(३०) प्राणियों को चिन्ता ही सब से बड़ा ज्वर है।
(३१) सत् और असत् के ज्ञान से शून्य मूर्ख कहा जाता है।
(३२) शिव और विष्णु की भक्ति ही करने योग्य और प्रिय कर्म है।
(३३) दोषों से रहित जीवन ही जीवन है।
(३४) जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है वही विद्या है। जो मुक्ति का हेतु है वही सच्चा बोध है।

(३५) सब से बड़ा लाभ आत्मज्ञान है ।

(३६) जिसने मन को जीता है उसीने संसार को जीता है ।

(३७) जो पुरुष कामदेव के बाणों से व्यथित नहीं होता वह सब शूरवीरों में श्रेष्ठ वीर है ।

(३८) जो पुरुष स्त्रियों के कटाक्षों से मोहित नहीं होता वह धीर बुद्धिमान् और समदर्शी है ।

(३९) सम्पूर्ण सांसारिक विषय विष से भी बड़े विष हैं ।

(४०) विषयों में आसक्त पुरुष सदैव दुःख का अनुभव करता है।

(४१) जो निरपेक्ष परोपकार करता है वह धन्यवादार्ह है ।

(४२) कल्याणरूप परमात्मतत्त्व में स्थित पुरुष सब का पूजनीय है ।

(४३) संसार के साथ प्रेम और पाप कभी नहीं करना चाहिये। परन्तु सद्ग्रन्थों के पठन और धर्म में सदैव तत्पर रहना चाहिये ।

(४४) संसार की चिन्ता ही संसार का कारण है ।

(४५) जिसने स्त्रीरूपी पिशाची से धोखा नहीं खाया वह विज्ञानियों में बड़ा विज्ञानी है ।

(४६) स्त्री ही प्राणियों के लिये बन्धन की शृंखला है ।

(४७) पूर्ण रूप से विनय भाव ही श्रेष्ठ व्रत है ।

(४८) स्त्रियों के मन और चरित को कोई नहीं जान सकता ।

(४९) सब को विषय वासना का त्याग कठिन ही है ।

(५०) सब लोग बुरी वासना (विषय भोग और पाप की इच्छायें) नहीं त्याग सकते ।

(५१) सद्विद्या से रहित पुरुष पशु के समान है ।

(५२) मूर्खों, नीचों, दुष्टों और पापियों के साथ कभी निवास नहीं करना चाहिये ।

(५३) मोक्षार्थी पुरुष को अति शीघ्र ममता रहित होकर सत्संग और ईश्वर की भक्ति करनी चाहिये।

(५४) दूसरों से मांगना क्षुद्रता का मूल है।

(५५) किसी भी आपत्ति में याचना न करना ही गौरव की जड़ है।

(५६) जिसका पुनर्जन्म न हो वह जातपद का वाच्य है (उसका उत्पन्न होना सार्थक है)।

(५७) जो एक बार मर कर पुनः न मरे (मुक्त हो जाय) उसकी ही मृत्यु श्रेष्ठ है।

(५८) जो पुरुष समर्थ होता हुआ भी समय पर उचित वचन नहीं कहता, वह मूक (गूंगा) है।

(५९) जो पुरुष यथार्थ और हित की बातों को नहीं सुनता है वह कानवाला होते हुए भी बहिरा है।

(६०) स्त्री विश्वासपात्र नहीं है।

(६१) परमात्मा ही अद्वितीय, सेवनीय और एक कल्याणरूप तत्व है।

(६२) सच्चरित्र उत्तम वस्तु है।

(६३) स्त्रीविषयक सुख ही त्यागने योग्य है।

(६४) सदा अभय ही देने योग्य वस्तु है।

(६५) क्रोध, लोभ, तृष्णा और असत्यसहित कामदेव सबका महाशत्रु है।

(६६) काम कभी भी विषय वासना से तृप्त नहीं होता।

(६७) ममत्व दोष दुःख का मूल है।

(६८) विद्वत्ता मुख का मनोहर भूषण है।

(६९) जो सब अवस्थाओं में प्राणियों के लिये हितकर सिद्ध हो वही सत्य है।

(७०) भगवान् शिव और श्रीकृष्णजी का पूजन रूप कर्म करके शोक दूर हो जाता है और प्रसन्नता होती है।

(७१) मन के नाश हो जाने पर मोक्ष मिलता है।

(७२) मोक्ष में कभी भी भय नहीं है।

(७३) अपनी मूर्खता ही सदा कष्ट देने वाला शल्य है (खटकने वाला कांटा है)।

(७४) गुरु, देवता और वृद्धों की निरन्तर उपासना करनी चाहिये।

(७५) प्राणों के हरने वाले काल के उपस्थित होने पर बुद्धिमान् पुरुष को तन, मन और वचन से सुखद और मृत्यु विनाशक मुरारि के चरणकमल का यत्नपूर्वक चिन्तन करना चाहिये।

(७६) शरीर कुवासना-दस्युओं से व्याप्त है।

(७७) विद्वान् पुरुष सभा में स्वयं शोभित हुआ उसको भी भूषित करता है।

(७८) सुविद्या माता के समान सुख देती है और बांटने से बढ़ती है।

(७९) लोकनिन्दा और भवकानन (संसाररूपी वन) से भयभीत रहना चाहिये।

(८०) जो विपत्ति में सहायता करे वह प्रियतम बन्धु है और जो सब प्रकार से पालन पोषण करता है वह पिता है।

(८१) शुद्ध, आनन्दघन, कल्याणरूप तत्व का ज्ञान होने पर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता।

(८२) सर्वात्मक पूर्ण ब्रह्म का ज्ञान होने पर ही जगत् की वास्तविकता का ज्ञान होता है।

(८३) संसार में सद्गुरु, सत्संगति, ब्रह्मविचार, सर्वस्व त्याग और कल्याणकारी आत्मबोध ये दुर्लभ हैं।

(८४) सबको कामदेव का जीतना कठिन है।

(८५) जिसने शास्त्र पढ़कर आत्म-लाभ नहीं किया तथा धर्म-शून्य है उसे पशु से भी अधिक पशु समझना चाहिये।

(८६) स्त्री देखने में तो सुधोपम है परन्तु परिणाम में विपरीत है।

(८७) पुत्रादिक मित्र के समान प्रतीत होते हैं परन्तु परिणाम में संसार में फंसाये रखने के कारण शत्रु ही हैं।

(८८) धन, यौवन और आयु बिजली के समान चंचल है।

(८९) सुपात्र का दिया हुआ दान ही परम श्लाघनीय है।

(९०) मृत्यु का सामना होने पर भी पाप नहीं करना चाहिये। और मृत्यु का सामना होने पर भी कल्याण रूप परमात्मा की पूजा करनी चाहिये।

(९१) संसार के मिथ्यात्व को और परमानन्द रूप परमात्म-प्राप्ति के उपाय को सदैव सोचना चाहिये।

(९२) जिससे भगवान् प्रसन्न होते हैं वही वास्तविक कर्म है।

(९३) संसार में कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

खड्गदेव शर्मा

स्वर्गीय ब्रह्मचारी खड्गदेव शर्मा

की

संस्कृत रचनायें

विवाहकल्पः ।

पूर्वं वेदिकादिकं निर्माय तत्र ग्रहादीनां यथास्थानं स्थापनं कुर्यात् ततो वरस्य द्वारे पूजां कृत्वा वेद्याः पश्चिमदिशि प्राङ्-मुखमासने उपवेशयेत् । ततः शान्तिपाठं गणेशादिदेवतानां च नामोच्चारणम् । ततः संकल्पः । ततो नवग्रहाणामाह्वानं पूजनञ्च । ततो वरस्योपवेशनानुज्ञा । ततो वरपूजनम् । ततो विष्टरदानम् । ततो वरस्य मन्त्रपठनपूर्वकविष्टरे उपवेशनम् । ततः पाद्यदानम् । ततो मन्त्रपूर्वकं वरःपादौ प्रक्षालयति । ततो द्वितीयविष्टरदानम् । वरोमन्त्रपूर्वकं गृह्णाति । ततोऽर्घदानम् । वरो मन्त्रपूर्वकमर्घाक्षतादिकं स्वोपरि पातयति अवशिष्टार्घस्यैशान्यां परित्यजनं मन्त्रपूर्वकम् । तत आचमनदानम् । वर आचामति मन्त्रपूर्वकमेकवारं द्विस्तूष्णीं ततो मधुपर्कदानम् । वरो मन्त्रपूर्वक तत्समीक्षते, आलोडयति किञ्चित्पृथिव्यां निक्षिपति । ततो वरः समन्त्रं प्राश्नाति मधुपर्कम् । शेषमसंचरदेशे निधाय द्विराचामति । ततो वरोऽङ्गानि स्पृशति समन्त्रम् । ततो द्विराचमनम् । ततो गोदानम् । तृणच्छेदनञ्च । ततोऽग्निस्थापनम् । ततः कन्यानयनम् । ततो वरः कन्यायै वस्त्रं ददाति । ततो वरः स्वयं वस्त्रं गृह्णाति । ततो द्विराचमनम् । ततः कन्या-

वरयोर्मिथो निरीक्षणम् । वरो मन्त्रं पठति । ग्रन्थिबन्धनश्च । ततो हस्तावलेपनं शाखोच्चारणं च । कन्यादान संकल्पो दक्षिणा च । ततो वरः कन्याया अंगुष्ठं गृह्णाति । द्यौस्त्वा ददात्वित्यादिमन्त्रं पठित्वा सोऽङ्गुष्ठमवलम्बमान एव ओं कोऽदादित्यादि मन्त्रं पठेत् । ततो वरः कन्याया वामहस्तं स्वदक्षिणेन हस्तेन संगृह्याग्निवेद्याः समीपं गच्छति मन्त्रं च पठति । ततो वेदिदक्षिणस्यां दिशि मौनी दृढपुरुषः कलशं गृहीत्वा तिष्ठति । ततः कन्यावरयोर्मिथः प्रेक्षणम् । वरस्य मन्त्रोच्चारणम् । ततो वरो वधूमग्रे कृत्वा वारमेकमग्निप्रदक्षिणां कुर्यात् । पश्चिमदिशि कटे आस्तां वधूं दक्षिणहस्ते कृत्वा । ततो वरो ब्रह्माणं वरयति (वृणाति) ततो वरो ब्रह्माणं पृच्छति स उत्तरयति । ततो ब्रह्मणोऽग्नेर्दक्षिणदिशि आसने उपवेशनम् । तत आचार्यवरणम् । ततः प्रणीतापात्रं पुरः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैश्चाच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेर्दक्षिणे निदध्यात् । ततः कुशकण्डिका । ततः पवित्र छेदनार्थं कुशत्रयमुत्तरपाश्चिमदिशि । ततः सम्मार्जनार्थं गर्भरहितं कुशद्वयं ततः प्रोक्षणीपात्रं, आज्यस्थाली, सम्मार्जनार्थं कुशत्रयं, उपयमनार्थं कुशत्रयं तिस्रः समिधः स्रुवः, षट् पंचाशदुत्तरशतद्वयमुष्टिपरिमितं तण्डुलं पात्रे कृत्वा च पवित्रार्थं कुशानां पूर्वदिशि निदध्यात् । अथ तत्रैव शमीपलाशमिश्रितलाजा पाषाणादि अन्यदपि तदुपयुक्तद्रव्यं निदध्यात् ।

तीर्थ-स्नानक्रमः

सर्वसामग्रीमानीय तीर्थतटं सम्प्राप्य पूर्वं स्नानम्। ततः प्रातः संध्या, तत आचमनम्। ततः प्राणायामः। ततः सामान्य-संकल्पः। तत उभाकवीत्यस्य पठनम्। ततो हेमाद्रि संकल्पः। ततः स्नानार्थं प्रार्थना। ततस्तोयाभिमन्त्रणम् उरु॑ इत्यादिना। ततो जलालोडनम्। ततो मृत्तिकानुलेपनं त्रिवारं स्नानं च। ततो जलाञ्जलिमेकेन गृहीत्वान्येन तटे प्रक्षेपः। ततो गोमयलेपनं मृत्तिकावत्स्नानं च। ततो भस्मलेपनम्। ततो हस्तेन सर्वावयवमार्जनम्। ततस्तैरेव मन्त्रैः कुम्भमुद्रया स्नानं मार्जनं वा। ततो दर्भैर्मार्जनम्। ततोऽपामार्गेण मार्जनम्। ततो दूर्वाभिर्मार्जनम्। ततोऽघमर्षणम् विष्णुध्यानं वा। ततः स्नानांगतर्पणम्। ततः शिखानिष्पीडनम्। ततो मध्याह्न संध्या। ततोऽर्कोपस्थानम्। ततो ब्रह्मयज्ञः। ततो विस्तृततर्पणम्। सूर्योपस्थाने मण्डलब्राह्मणं पूर्वमेव पठनीयं नेह। इति स्नानम्।

संन्यासक्रमः (त्रिदिनसाध्यः) प्रथमदिने प्रायश्चित्तम्।

यथा—

स्नानम् प्रातः संध्या, जपः प्रायश्चित्तसंकल्पः, क्षौरं दश-विधस्नानम्, तीर्थस्नानविधिः मध्याह्नसंध्या उपस्थानम् ब्रह्म-यज्ञः, तर्पणम् अग्नितन्त्रम् पंचगव्यहोमः, प्रायश्चित्तहोमः, गायत्रीहोमः, स्नानम् सायं संध्या, प्रायश्चित्तहोमः पंचगव्य-प्राशनम्, दानसंकल्पः कर्मेश्वरार्पणम्।

द्वितीय दिने—

उपकरण संपादनम् अष्टश्राद्धानि, क्षौरं, दण्डप्रतिष्ठा संन्याससंकल्पः, गणपतिपूजनम्, पुण्याहवाचनम्, मातृका

पूजनम् नान्दीश्राद्धम्, देवता नमस्कार: वेदादि मन्त्रपाठः, सक्तु-प्राशनम्, पयोदधि आज्यप्राशनम्, आचमनम्, सवित्री प्रवेशः पृष्ठोदिवि विधानम्, ब्रह्मान्वाधानम् सायं सन्ध्या; सायं होम-जागरणम् ।

तृतीय दिने—

प्रातः कृत्यं, मध्याह्न कृत्यं वैश्वदेवः, आग्नेयस्थालीपाकः, तरत्समंदी सूक्तजपः प्राणादिहोमः पुरुषसूक्तहोमः विरजा-होमः पुरुषसूक्त जपः, वेदादि मन्त्रजपः होमशेष समापनम्, दानम् गृह्याग्नि उपस्थानम् अग्नि समारोपः गृहान्निष्क्रमणम्, जलाशय प्रतिगमनम् अभिमन्त्रणं संन्याससंकल्पः जलांजलि-प्रदानम् एषणा त्यागः, प्रैषः, प्रार्थना सावित्रीप्रवेशः तरत्समन्दी-सूक्तपाठः एषणा त्यागः प्रैषः संन्यास प्रैषोच्चारः शिखायज्ञो-पवीतंत्यागः प्रार्थना, कौपीनग्रहणम् दण्डग्रहणं, कमण्डलु-ग्रहणम् आसनग्रहणं, गुरूपसंदनम् शान्तिपाठः पुरुषसूक्तजपः, हृदयालंभनम्, प्रणवोपदेशः पंचीकरणोपदेशः, महावाक्यो-पदेशः, पर्यंक शौचम्, योगपट्टः ।

यतीनां चातुर्मास्यारम्भेति कर्तव्यता

शान्तिसूक्तं, गणपतिपूजनं, स्वस्तिपुण्याहवाचनम्, सर्वतो भद्रमण्डलपूजनम्, कलशस्थापनम्, भूशुद्धिः ।

आसनादि, विघ्नोत्सारणम्, पुरुषसूक्तन्यासः(यजमानदेहे) यन्त्रलेखनम्, देवता आवाहनम् । प्राणप्रतिष्ठा ।

पुरुषसूक्तन्यासः, षोडशोपचार, नैवेद्यान्तपूजनम् (पंचामृत अभिषेकः) आवरणपूजनम् । पुनः पंचोपचारपूजनं नीराजनान्तं मन्त्रपुष्पाञ्जलि प्रार्थना, नियमग्रहणम्, गृहस्थकृतयतिपूजनम्, प्रसादवितरणम्, विसर्जनम्, शिष्यैरभिवादनम् ॥

॥ इति ॥

बाबू चांदमल चंडक प्रबन्धकर्ता के प्रबन्ध से

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर

में

मुद्रित

पुस्तक मिलने के पते—

(१) मैनेजर ज्ञान-प्रकाश-मन्दिर,
पो० माछरा जि० मेरठ

(२) मैनेजर, साहित्य-सेवासदन,
मेरठ

(३) मैनेजर साहित्य-मंडल,
बाज़ार सीताराम, दिल्ली

(४) मैनेजर, 'कल्याण' गोरखपुर